॥ ॐ श्री गणेशाय नमः॥

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 तथा एफ.वाई.यू.पी के अनुरूप पाठ्यक्रमानुसार

(बी.ए-प्रथम वर्ष, सेमेस्टर- प्रथम, विषय-संस्कृत, पेपरकोड-A020101T)

शीर्षकः "संस्कृत पद्य साहित्य एवं व्याकरण"

डॉ.चन्द्र किशोर शास्त्री

सहायक आचार्य-संस्कृत विभाग,

ब्रह्मावर्त पी.जी.कॉलेज,मन्धना

(सी.एस.जे.एम.विश्वविद्यालय),

कानपुर नगर,उ.प्र।

I.विश्वविद्यालय स्तरीय संभावित समीक्षात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की अवधारणा प्रस्तुत कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की अवधारणा का विवेचन कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की अवधारणा की समीक्षा कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की अवधारणा पर प्रकाश डालिए

उत्तरः- संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की अवधारणा

प्रस्तावना

संस्कृत-वाङ्मय भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा ज्ञान-परम्परा का मूलाधार है। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल बौद्धिक उपलब्धि न मानकर मानव, समाज, प्रकृति तथा ब्रह्म के समन्वित बोध का माध्यम माना है। इसी कारण संस्कृत-वाङ्मय में ज्ञान (विद्या) और विज्ञान (विशिष्ट एवं तर्कसम्मत ज्ञान) का अद्भुत समन्वय मिलता है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्ग, दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, गणित, योग तथा नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थ भारतीय पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान के विविध आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा का उद्देश्य केवल भौतिक उन्नति नहीं, अपितु व्यक्ति, समाज और विश्व के समग्र कल्याण (लोकसंग्रह एवं सर्वे भवन्तु सुखिनः) की स्थापना है।

पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की अवधारणा

'ज्ञान' का सामान्य अर्थ है—सत्य का बोध, जबकि 'विज्ञान' का अर्थ है—तर्क, अनुभव, परीक्षण एवं प्रमाण पर आधारित विशिष्ट ज्ञान। भारतीय परम्परा में इन दोनों को परस्पर पूरक माना गया है। भगवद्गीता में कहा गया है—**"ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः"** (भगवद्गीता 7.2), अर्थात् केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं, अपितु अनुभवजन्य एवं व्यवहारिक ज्ञान भी आवश्यक है।

भारतीय ज्ञान-परम्परा का मूल स्रोत वेद हैं। 'वेद' शब्द ही 'विद्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—जानना। अतः वेद ज्ञान के आदि स्रोत माने गए हैं। भारतीय परम्परा वेदों को अपौरुषेय एवं सनातन ज्ञान का भण्डार स्वीकार करती है। उनमें धर्म, दर्शन, चिकित्सा, कृषि, खगोल, पर्यावरण, समाज, शिक्षा एवं नैतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक तत्त्व निहित हैं।

संस्कृत-वाङ्मय में ज्ञान-विज्ञान के प्रमुख आयाम

1. दार्शनिक ज्ञानः-उपनिषदों में आत्मा, ब्रह्म, जगत्, कर्म एवं मोक्ष का गम्भीर विवेचन मिलता है। षड्दर्शन—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा एवं वेदान्त—भारतीय चिन्तन की वैज्ञानिक एवं तार्किक परम्परा को विकसित करते हैं।

2. गणित एवं ज्योतिष:-शुल्बसूत्रों में ज्यामिति का व्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है। आर्यभट, ब्रह्मगुप्त एवं भास्कराचार्य ने गणित एवं खगोल विज्ञान को नई दिशा प्रदान की। शून्य, दशमलव प्रणाली तथा ग्रह-गति के सिद्धान्त भारतीय ज्ञान-विज्ञान की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

3. आयुर्वेद:-चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता में चिकित्सा-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, औषध-विज्ञान तथा शल्यचिकित्सा का अत्यन्त विकसित स्वरूप मिलता है। आयुर्वेद का उद्देश्य केवल रोग-निवारण नहीं, बल्कि स्वस्थ जीवन की स्थापना है।

4. योग-विज्ञान:-योगसूत्र में शरीर, मन एवं आत्मा के समन्वित विकास का मार्ग प्रस्तुत किया गया है। अष्टाङ्गयोग आज भी सम्पूर्ण विश्व में स्वास्थ्य एवं मानसिक संतुलन का प्रभावी साधन माना जाता है।

5. अर्थशास्त्र एवं राजनीति:-अर्थशास्त्र में शासन, अर्थव्यवस्था, कर-व्यवस्था, कूटनीति एवं प्रशासन का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। यह भारतीय राज्य-व्यवस्था का उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

6. पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी:-वैदिक साहित्य में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश को जीवन का आधार माना गया है। अथर्ववेद का प्रसिद्ध मंत्र— "***माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः***" (अथर्ववेद- 12.1.12) मानव एवं प्रकृति के सह-अस्तित्व का सार्वकालिक संदेश देता है।

पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की विशेषताएँ

1.समग्र (Holistic) दृष्टिकोण

2.अनुभव एवं तर्क पर आधारित ज्ञान

3.आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक समन्वय

4.लोककल्याण एवं विश्वकल्याण की भावना

5. प्रकृति के साथ संतुलित जीवन

6. नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित जीवन-दृष्टि

वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के पश्चात भारतीय ज्ञान-परम्परा पर पुनः विशेष बल दिया जा रहा है। योग, आयुर्वेद, पर्यावरण संरक्षण, सतत् विकास, भारतीय गणित, ज्योतिष, दर्शन एवं संस्कृत-अध्ययन आज वैश्विक स्तर पर शोध के प्रमुख विषय बन चुके हैं। भारतीय ज्ञान-विज्ञान आधुनिक विज्ञान का विकल्प नहीं, बल्कि उसका पूरक है, जो समग्र एवं मानवीय विकास की दिशा प्रदान करता है।

उपसंहार

संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान भारतीय सभ्यता की अमूल्य धरोहर है। यह केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य के लिए भी प्रेरणास्रोत है। भारतीय ज्ञान-परम्परा सत्य, तर्क, अनुभव, नैतिकता एवं लोकमंगल पर आधारित है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इस ज्ञान-संपदा का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन, संरक्षण एवं पुनर्प्रयोग किया जाए, जिससे भारत पुनः विश्व को ज्ञान, संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों के क्षेत्र में दिशा प्रदान कर सके।

प्रश्न-2. वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दीजिए

अथवा

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए

अथवा

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की समीक्षा कीजिए

अथवा

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए

अथवा

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित भारतीय दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त प्रस्तुत कीजिए

उत्तर:- वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित भारतीय दर्शन

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध दार्शनिक परम्पराओं में अग्रगण्य है। इसका मूल आधार वैदिक साहित्य है, जिसका क्रमशः विकास ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, महाकाव्य, पुराण, स्मृतियों तथा लौकिक संस्कृत-साहित्य में हुआ। भारतीय दर्शन का उद्देश्य केवल बौद्धिक जिज्ञासा की तृप्ति नहीं, अपितु मानव जीवन के परम लक्ष्य—मोक्ष—की प्राप्ति तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण की स्थापना है। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में जीवन, जगत्, आत्मा, ब्रह्म, कर्म, पुनर्जन्म, धर्म, मोक्ष तथा नैतिकता से सम्बन्धित गम्भीर सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

भारतीय दर्शन की अवधारणा

*'दर्शन' शब्द 'दृश्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—यथार्थ तत्त्व का साक्षात्कार। भारतीय दर्शन वस्तुओं के बाह्य स्वरूप का नहीं, अपितु उनके वास्तविक तत्त्व का अन्वेषण करता है। उपनिषदों में कहा गया है— **'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'** (बृहदारण्यकोपनिषद् 2.4.5), अर्थात् आत्मा का ज्ञान ही मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।*

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्त

*1.**ब्रह्म एवं आत्मा का सिद्धान्त**: - उपनिषदों का मूल प्रतिपाद्य ब्रह्म एवं आत्मा की एकता है। छान्दोग्योपनिषद् का प्रसिद्ध महावाक्य— **'तत्त्वमसि'** (छान्दोग्योपनिषद्-6.8.7) तथा बृहदारण्यकोपनिषद् का— **'अहं ब्रह्मास्मि'**(बृहदारण्यकोपनिषद्-1.4.10) जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हैं।*

***2. कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त** :- भारतीय दर्शन के अनुसार प्रत्येक कर्म का फल अनिवार्य है। शुभ कर्म से सुख तथा अशुभ कर्म से दुःख प्राप्त होता है। भगवद्गीता में कहा गया है— **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'**(भगवद्गीता- 2.47)। यह सिद्धान्त नैतिक जीवन एवं उत्तरदायित्व की भावना को सुदृढ़ करता है।*

3. धर्म का सिद्धान्त: - वैदिक एवं लौकिक साहित्य में धर्म को समाज एवं व्यक्ति के जीवन का आधार माना गया है। महाभारत में कहा गया है— ***"धर्मो रक्षति रक्षितः"*** ,अर्थात् जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

4. मोक्ष का सिद्धान्त: - भारतीय दर्शन में मोक्ष को मानव जीवन का परम पुरुषार्थ माना गया है। उपनिषदों एवं गीता के अनुसार ज्ञान, भक्ति एवं निष्काम कर्म के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है।

5. अहिंसा एवं करुणा: - भारतीय संस्कृति का मूल आधार अहिंसा है। जैन, बौद्ध तथा वैदिक परम्परा सभी जीवों के प्रति दया, करुणा एवं मैत्री का उपदेश देती हैं। महाभारत में कहा गया है— ***"अहिंसा परमो धर्मः"।***

6. वसुधैव कुटुम्बकम्: -भारतीय दर्शन सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानता है-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥ *(महोपनिषद्- 6.71)*

यह सिद्धान्त विश्वबन्धुत्व एवं सार्वभौमिक मानवता का संदेश देता है।

7. सत्य एवं नैतिकता: - उपनिषदों में सत्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य माना गया है— ***'सत्यमेव जयते नानृतम्'****(मुण्डकोपनिषद्- 3.1.6)।*

8. समन्वय एवं सह-अस्तित्व: - ऋग्वेद में सामाजिक समरसता एवं एकता का संदेश दिया गया है— ***'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'*** *(ऋग्वेद 10.191.2)। यह सिद्धान्त सहयोग, सामंजस्य एवं सामाजिक एकता का आधार है।*

लौकिक संस्कृत-साहित्य में दार्शनिक चिन्तन

महाकवि कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष तथा भर्तृहरि के काव्यों में धर्म, नीति, वैराग्य, लोकमंगल, प्रकृति-प्रेम एवं आध्यात्मिक चेतना का समन्वित स्वरूप प्राप्त होता है। रामायण में आदर्श जीवन एवं मर्यादा का दर्शन है, जबकि महाभारत में धर्म, न्याय एवं कर्मयोग का व्यापक विवेचन मिलता है।

भारतीय दर्शन की विशेषताएँ

1. आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक समन्वय
2. आत्मा एवं ब्रह्म की एकता
3. कर्म एवं नैतिक उत्तरदायित्व
4. धर्म, सत्य एवं अहिंसा की प्रतिष्ठा
5. विश्वबन्धुत्व एवं सह-अस्तित्व
6. लोककल्याण एवं मोक्ष की भावना
7. समन्वयवादी एवं उदार दृष्टिकोण

उपसंहार

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित भारतीय दर्शन मानव जीवन के समग्र विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। यह केवल आध्यात्मिक चिन्तन तक सीमित नहीं, बल्कि नैतिकता, सामाजिक समरसता, पर्यावरण संरक्षण, विश्वशान्ति तथा लोककल्याण का भी समर्थक है। आज जब सम्पूर्ण विश्व भौतिकता, हिंसा एवं पर्यावरणीय

संकटों से जूझ रहा है, तब भारतीय दर्शन के सत्य, अहिंसा, धर्म, सह-अस्तित्व एवं "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे सिद्धान्त सम्पूर्ण मानवता के लिए अत्यन्त प्रासंगिक एवं प्रेरणास्पद हैं।

प्रश्न-3. संस्कृत-वाङ्मय में निहित भूगोल एवं खगोल विज्ञान के स्वरूप एवं महत्त्व का विवेचन कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में भूगोल एवं खगोल विज्ञान के स्वरूप एवं महत्त्व प्रस्तुत कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में भूगोल एवं खगोल विज्ञान के स्वरूप एवं महत्त्व की समीक्षा कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में भूगोल एवं खगोल विज्ञान के स्वरूप एवं महत्त्व पर प्रकाश डालिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में भूगोल एवं खगोल विज्ञान के स्वरूप एवं महत्त्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए

उत्तरः- संस्कृत-वाङ्मय में निहित भूगोल एवं खगोल विज्ञान

प्रस्तावना

संस्कृत-वाङ्मय भारतीय ज्ञान-परम्परा का प्रामाणिक एवं समृद्ध स्रोत है। इसमें धर्म, दर्शन, साहित्य तथा संस्कृति के साथ-साथ भूगोल (Geography) एवं खगोल विज्ञान (Astronomy) का भी अत्यन्त विकसित एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त होता है। वैदिक ऋषियों ने पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, दिशाओं, पर्वतों, नदियों तथा ऋतुचक्र का सूक्ष्म अध्ययन किया और उसे वेदों, वेदाङ्गों, पुराणों तथा सिद्धान्त ग्रन्थों में व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया। भारतीय भूगोल एवं खगोल का उद्देश्य केवल ब्रह्माण्ड का वर्णन करना नहीं था, बल्कि मानव जीवन, कृषि, काल-गणना, यज्ञ, यात्रा तथा सामाजिक व्यवस्था को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना भी था।

संस्कृत-वाङ्मय में भूगोल का स्वरूप

संस्कृत साहित्य में भूगोल का वर्णन अत्यन्त व्यापक एवं व्यवस्थित रूप में मिलता है। ऋग्वेद में सप्तसिन्धु प्रदेश, नदियों, पर्वतों तथा दिशाओं का उल्लेख मिलता है। नदीसूक्त में गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री (सतलुज), विपाशा (व्यास), परुष्णी (रावी) आदि नदियों का वर्णन भारतीय भौगोलिक ज्ञान का प्रमाण है। पुराणों में जम्बूद्वीप, भारतवर्ष, सप्तद्वीप, सप्तसमुद्र तथा विभिन्न पर्वतों एवं नदियों का विस्तृत विवरण मिलता है। रामायण तथा महाभारत में भी भारत के विभिन्न जनपदों, नगरों, पर्वतों, वनों एवं समुद्रों का विस्तृत एवं यथार्थ वर्णन प्राप्त होता है। कालिदास के रघुवंश तथा मेघदूत में भी भारत के प्राकृतिक भूगोल का अत्यन्त मनोहारी एवं तथ्यपरक चित्रण मिलता है।

संस्कृत-वाङ्मय में खगोल विज्ञान का स्वरूप

भारतीय खगोल विज्ञान का प्रारम्भ वैदिक काल से माना जाता है। वेदाङ्ग ज्योतिष को भारतीय खगोल-विज्ञान का आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। इसमें सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्रों की गति, ऋतु-निर्धारण, तिथि, पक्ष, मास, अयन तथा

संवत्सर का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य को समस्त सौरमण्डल का प्रकाशदाता एवं जीवनदाता बताया गया है— **'सूर्यो आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'**।(ऋग्वेद 1.115.1), अर्थात् सूर्य समस्त चर एवं अचर जगत् की आत्मा है।

आगे चलकर आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य तथा लल्लाचार्य जैसे महान आचार्यों ने भारतीय खगोल विज्ञान को अत्यन्त विकसित स्वरूप प्रदान किया।

भूगोल एवं खगोल विज्ञान का महत्त्व

संस्कृत-वाङ्मय में भूगोल एवं खगोल विज्ञान का महत्त्व अनेक दृष्टियों से स्वीकार किया गया है—

1. काल-गणना – दिन, मास, वर्ष, ऋतु तथा पंचांग का निर्माण।
2. कृषि – वर्षा, ऋतु परिवर्तन एवं कृषि कार्यों का निर्धारण।
3. नौवहन एवं यात्रा – दिशाओं एवं नक्षत्रों के आधार पर मार्ग-निर्धारण।
4. यज्ञ एवं धार्मिक अनुष्ठान – शुभ मुहूर्त एवं काल-निर्णय।
5. पर्यावरणीय संतुलन – प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड के साथ सामंजस्य।
6. वैज्ञानिक दृष्टिकोण – ग्रहों, नक्षत्रों एवं खगोलीय घटनाओं का तर्कसंगत अध्ययन।
7. राष्ट्रीय एकता – सम्पूर्ण भारतवर्ष के भूगोल का समन्वित ज्ञान।

आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता

आज भूगोल एवं खगोल विज्ञान आधुनिक विज्ञान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा में विकसित कालगणना, ग्रह-गति का अध्ययन, ऋतु-विज्ञान तथा पर्यावरणीय दृष्टिकोण आज भी वैज्ञानिक अनुसंधान का विषय हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने भी भारतीय ज्ञान-परम्परा के इन वैज्ञानिक आयामों के अध्ययन पर विशेष बल दिया है।

उपसंहार

संस्कृत-वाङ्मय में निहित भूगोल एवं खगोल विज्ञान भारतीय मनीषा की वैज्ञानिक दृष्टि, सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति तथा प्रकृति के प्रति गहन संवेदनशीलता का परिचायक है। वैदिक ऋषियों से लेकर आर्यभट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त एवं भास्कराचार्य तक भारतीय विद्वानों ने भूगोल एवं खगोल विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। यह ज्ञान केवल ऐतिहासिक धरोहर नहीं, बल्कि आधुनिक विज्ञान, पर्यावरण संरक्षण तथा मानव-कल्याण के लिए भी प्रेरणास्रोत है। अतः संस्कृत-वाङ्मय में निहित इस वैज्ञानिक परम्परा का संरक्षण, अध्ययन एवं पुनर्पाठ वर्तमान समय की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

प्रश्न-4. भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के योगदान पर प्रकाश डालिए

अथवा

भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के योगदान का संक्षिप्त परिचय दीजिए

अथवा

भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के योगदान की समीक्षा कीजिए

अथवा

भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के योगदान का उल्लेख दीजिए

अथवा

भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र के योगदान का विवेचन कीजिए

अथवा

भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र का योगदान प्रस्तुत कीजिए

उत्तरः- भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान-परम्परा विश्व की प्राचीनतम एवं समृद्ध वैज्ञानिक परम्पराओं में से एक है। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत-वाङ्मय में गणित, ज्योतिष तथा वास्तुशास्त्र का अत्यन्त विकसित एवं वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त होता है। भारतीय मनीषियों ने इन विषयों का विकास केवल सैद्धान्तिक अध्ययन के लिए नहीं, बल्कि समाज, कृषि, स्थापत्य, काल-गणना, यज्ञ, नगर-योजना तथा मानव-कल्याण के लिए किया। वेद, वेदाङ्ग, शुल्बसूत्र, सिद्धान्त ग्रन्थ, पुराण तथा वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ भारतीय वैज्ञानिक चिन्तन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनका प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि विश्व की वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं पर भी पड़ा।

भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित का योगदान

भारतीय गणित का प्रारम्भ वैदिक काल से माना जाता है। शुल्बसूत्रों में यज्ञवेदियों के निर्माण के लिए ज्यामिति के अनेक सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है। भारतीय गणित की सबसे महत्त्वपूर्ण देन शून्य (0) तथा दशमलव स्थानमान पद्धति है, जिसने विश्व की गणना-पद्धति में क्रान्ति ला दी। महान गणितज्ञ आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य तथा महावीराचार्य ने अंकगणित, बीजगणित, त्रिकोणमिति तथा ज्यामिति के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया।

भारतीय ज्ञान-परम्परा में ज्योतिष का योगदान

भारतीय परम्परा में ज्योतिष को वेदाङ्ग कहा गया है। इसका उद्देश्य ग्रहों एवं नक्षत्रों की गति का अध्ययन, काल-निर्धारण, पंचांग-निर्माण, ऋतु-निर्णय तथा यज्ञादि के उपयुक्त समय का निर्धारण करना था। वेदाङ्ग ज्योतिष भारतीय खगोल-विज्ञान का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। आगे चलकर वराहमिहिर, आर्यभट, ब्रह्मगुप्त तथा भास्कराचार्य ने ग्रह-गति, ग्रहण, नक्षत्र, अयन, संवत्सर तथा काल-गणना का वैज्ञानिक विवेचन किया। भारतीय ज्योतिष का वैज्ञानिक पक्ष मुख्यतः गणित-ज्योतिष (खगोल विज्ञान) पर आधारित है, जिसने समय-निर्धारण, पंचांग-निर्माण तथा कृषि एवं सामाजिक जीवन को व्यवस्थित किया।

भारतीय ज्ञान-परम्परा में वास्तुशास्त्र का योगदान

वास्तुशास्त्र भारतीय स्थापत्य एवं नगर-योजना का विज्ञान है। इसका उद्देश्य प्रकृति, दिशा, भूमि, जल, वायु एवं प्रकाश के अनुरूप भवनों का निर्माण करना है। भारतीय वास्तुशास्त्र में पर्यावरणीय संतुलन, सौन्दर्य तथा उपयोगिता का

अद्भुत समन्वय मिलता है। वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों में नगर-योजना, मन्दिर-निर्माण, राजप्रासाद, जल-व्यवस्था, मार्ग-निर्माण तथा स्थापत्य-कला के वैज्ञानिक सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

भारतीय ज्ञान-परम्परा की विशेषताएँ

1. गणित एवं ज्योतिष का वैज्ञानिक एवं तार्किक विकास।
2. शून्य एवं दशमलव प्रणाली का विश्व को योगदान।
3. काल-गणना एवं पंचांग की विकसित परम्परा।
4. प्रकृति-सम्मत एवं पर्यावरण-अनुकूल वास्तु-योजना।
5. विज्ञान एवं आध्यात्मिकता का समन्वय।
6. लोककल्याण एवं व्यावहारिक जीवन पर आधारित दृष्टिकोण।

आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता

आज भारतीय गणित, खगोल-विज्ञान तथा वास्तुशास्त्र विश्वभर में शोध का विषय हैं। शून्य एवं दशमलव प्रणाली आधुनिक विज्ञान एवं कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी की आधारशिला है। भारतीय खगोलविदों के अनेक सिद्धान्त आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों में ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। पर्यावरण-अनुकूल भवन-निर्माण तथा सतत् विकास (**Sustainable Development**) की अवधारणा में भारतीय वास्तुशास्त्र के अनेक सिद्धान्त आज भी उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने भी भारतीय ज्ञान-परम्परा के इन आयामों के अध्ययन एवं अनुसंधान पर विशेष बल दिया है।

उपसंहार

भारतीय ज्ञान-परम्परा में गणित, ज्योतिष एवं वास्तुशास्त्र का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं विश्वमान्य है। भारतीय मनीषियों ने इन विषयों को केवल सैद्धान्तिक रूप में नहीं, बल्कि मानव जीवन के व्यावहारिक उपयोग से जोड़कर विकसित किया। शून्य एवं दशमलव प्रणाली, वैज्ञानिक काल-गणना, ग्रह-गति का अध्ययन तथा पर्यावरण-सम्मत स्थापत्य भारतीय प्रतिभा के उज्ज्वल प्रमाण हैं। अतः इन वैज्ञानिक उपलब्धियों का संरक्षण, पुनर्मूल्याँकन एवं समुचित अध्ययन वर्तमान समय की आवश्यकता है, जिससे भारतीय ज्ञान-परम्परा का वैश्विक महत्त्व और अधिक सुदृढ़ हो सके।

प्रश्न-5. संस्कृत साहित्य में योग एवं आयुर्वेद का स्थान तथा समकालीन प्रासंगिकता स्पष्ट कीजिए

अथवा

. संस्कृत साहित्य में योग एवं आयुर्वेद का योगदान प्रस्तुत कीजिए

अथवा

संस्कृत साहित्य में योग एवं आयुर्वेद के योगदान का विवेचन कीजिए

अथवा

संस्कृत साहित्य में योग एवं आयुर्वेद के योगदान की समीक्षा कीजिए

अथवा

. संस्कृत साहित्य में योग एवं आयुर्वेद का महत्त्व स्पष्ट/प्रस्तुत कीजिए

अथवा

संस्कृत साहित्य में योग एवं आयुर्वेद के योगदान पर प्रकाश डालिए

उत्तर: - संस्कृत-वाङ्मय में निहित अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत

प्रस्तावना

संस्कृत-साहित्य भारतीय ज्ञान-परम्परा का मूलाधार है। इसमें मानव जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास से सम्बन्धित विविध विद्याओं का समन्वित स्वरूप प्राप्त होता है। इनमें योग एवं आयुर्वेद का विशेष स्थान है। योग मानव के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास का विज्ञान है, जबकि आयुर्वेद स्वस्थ जीवन, रोग-निवारण एवं दीर्घायु का शास्त्र है। दोनों का मूल उद्देश्य मानव जीवन को संतुलित, स्वस्थ एवं सुखी बनाना है। संस्कृत-साहित्य में इन दोनों विद्याओं का अत्यन्त वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है, जिसके कारण आज सम्पूर्ण विश्व में इनकी उपयोगिता निरन्तर बढ़ रही है।

संस्कृत-साहित्य में योग का स्थान

योग का प्रारम्भिक स्वरूप वेदों एवं उपनिषदों में प्राप्त होता है। कठोपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्, भगवद्गीता तथा योगदर्शन में योग का विस्तृत विवेचन मिलता है। महर्षि पतञ्जलि ने योग को व्यवस्थित रूप प्रदान करते हुए प्रसिद्ध सूत्र दिया है— **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'** (योगसूत्र- 1.2), अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

पतञ्जलि ने अष्टाङ्गयोग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि—का प्रतिपादन किया, जो आज भी योगशास्त्र का आधार है। भगवद्गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का समन्वित स्वरूप प्राप्त होता है, जो जीवन को कर्तव्य, ज्ञान एवं भक्ति से जोड़ता है।

संस्कृत-साहित्य में आयुर्वेद का स्थान

आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा-विज्ञान की प्राचीन एवं वैज्ञानिक परम्परा है। इसका आधार अथर्ववेद माना जाता है। आयुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य केवल रोगों का उपचार नहीं, बल्कि स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगी के रोग का निवारण है। चरकसंहिता में कहा गया है— **'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् आतुरस्य विकारप्रशमनम्'**, अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगी के रोग का शमन ही आयुर्वेद का उद्देश्य है। आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थों में शरीर-विज्ञान, औषध-विज्ञान, शल्यचिकित्सा, आहार-विहार, रोग-निदान एवं चिकित्सा का विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है।

योग एवं आयुर्वेद का पारस्परिक सम्बन्ध

योग एवं आयुर्वेद दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। योग मन एवं शरीर को संतुलित करता है, जबकि आयुर्वेद शरीर की संरचना, रोग-निवारण तथा प्रतिरोधक क्षमता को सुदृढ़ करता है। योग मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करता है और आयुर्वेद शारीरिक स्वास्थ्य की रक्षा करता है। दोनों का समन्वित उद्देश्य **'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन'** की स्थापना है।

समकालीन प्रासंगिकता

वर्तमान युग तनाव, अनियमित जीवनशैली, प्रदूषण, मानसिक विकार एवं जीवनशैली-जनित रोगों का युग है। ऐसी स्थिति में योग एवं आयुर्वेद की प्रासंगिकता अत्यधिक बढ़ गई है। योग के नियमित अभ्यास से तनाव, अवसाद, उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं मोटापे जैसी समस्याओं में लाभ प्राप्त होता है। इसी प्रकार आयुर्वेद प्राकृतिक औषधियों, संतुलित आहार, दिनचर्या एवं ऋतुचर्या के माध्यम से स्वास्थ्य-संरक्षण पर बल देता है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया जाना योग की वैश्विक स्वीकृति का प्रमाण है। भारत सरकार द्वारा आयुष मंत्रालय की स्थापना तथा आयुर्वेद, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के प्रोत्साहन से इनकी उपयोगिता और अधिक बढ़ी है।

योग एवं आयुर्वेद की प्रमुख विशेषताएँ

1.समग्र **(Holistic)** स्वास्थ्य की अवधारणा।

2. शरीर, मन एवं आत्मा का समन्वित विकास।

3.प्राकृतिक एवं सुरक्षित चिकित्सा-पद्धति।

4.रोग-निवारण के साथ रोग-प्रतिरोध पर बल।

5.अनुशासित एवं संतुलित जीवनशैली का समर्थन।

6.लोककल्याण एवं दीर्घायु की भावना।

उपसंहार

संस्कृत-साहित्य में योग एवं आयुर्वेद भारतीय ज्ञान-परम्परा की अमूल्य धरोहर हैं। ये केवल प्राचीन विद्याएँ नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन की अनेक समस्याओं का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती हैं। योग मानसिक शान्ति, आत्मानुशासन एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है, जबकि आयुर्वेद स्वस्थ, संतुलित एवं प्राकृतिक जीवनशैली का आधार प्रदान करता है। आज जब सम्पूर्ण विश्व समग्र स्वास्थ्य की ओर अग्रसर है, तब संस्कृत-साहित्य में निहित योग एवं आयुर्वेद का अध्ययन, संरक्षण एवं व्यावहारिक अनुप्रयोग मानवता के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं प्रासंगिक सिद्ध हो रहा है।

प्रश्न-6. संस्कृत-वाङ्मय में अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत की परम्परा का परिचय दीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत की परम्परा पर प्रकाश डालिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत का महत्त्व स्पष्ट/ प्रस्तुत कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत के महत्त्व/योगदान का विवेचन कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत के महत्त्व/योगदान की समीक्षा कीजिए

अथवा

संस्कृत-वाङ्मय में अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत के महत्त्व/योगदान की समकालीन प्रासंगिकता स्पष्ट कीजिए

उत्तरः- *संस्कृत-वाङ्मय में निहित अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत*

प्रस्तावना

*संस्कृत-वाङ्मय भारतीय ज्ञान-परम्परा का अक्षय भण्डार है। इसमें धर्म, दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति के साथ-साथ अर्थशास्त्र, विज्ञान तथा संगीत जैसे व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक विषयों का भी सुविस्तृत एवं सुव्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है। भारतीय मनीषियों ने ज्ञान को केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन नहीं माना, बल्कि लोककल्याण, राष्ट्रनिर्माण एवं मानव सभ्यता के समग्र विकास का माध्यम भी माना। वैदिक साहित्य, उपनिषद्, वेदाङ्ग, रामायण, महाभारत, पुराण, अर्थशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, नाट्यशास्त्र तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थ इस समृद्ध ज्ञान-विज्ञान परम्परा के प्रमाण हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा का मूल उद्देश्य **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** तथा **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** की भावना को साकार करना है।*

1. संस्कृत-वाङ्मय में अर्थशास्त्र

***(क) अर्थशास्त्र की परम्परा**: - भारतीय अर्थचिन्तन का प्रारम्भ वैदिक साहित्य से होता है। ऋग्वेद में कृषि, पशुपालन, व्यापार तथा धन-संचय का उल्लेख मिलता है। महाभारत, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति तथा विशेष रूप से कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था का व्यवस्थित विवेचन प्राप्त होता है। कौटिल्य ने अर्थ को राज्य की शक्ति का मूल माना है— **'अर्थमूलौ धर्मकामौ'**,अर्थात् धर्म एवं काम की सिद्धि का आधार अर्थ है।*

(ख) अर्थशास्त्र का स्वरूप

1.राज्य एवं शासन-व्यवस्था

2.वित्त एवं कर-प्रणाली

3.कृषि एवं सिंचाई

4.उद्योग एवं व्यापार

5.मुद्रा एवं बैंक व्यवस्था

6.कूटनीति एवं विदेश नीति

7.लोककल्याणकारी शासन

(ग) अर्थशास्त्र का महत्त्व एवं योगदान

1.सुशासन की स्थापना

2.आर्थिक आत्मनिर्भरता

3.राष्ट्रीय सुरक्षा

4.कृषि एवं व्यापार का विकास

5.भ्रष्टाचार-नियन्त्रण

6.न्यायपूर्ण कर व्यवस्था

7.प्रजा-कल्याण

*कौटिल्य का प्रसिद्ध सिद्धान्त— **'प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्'**, आज भी सुशासन का मूल आधार माना जाता है।*

2. संस्कृत-वाङ्मय में विज्ञान

***(क) विज्ञान की परम्परा**:-भारतीय विज्ञान का विकास वेदों से प्रारम्भ होकर वेदाङ्ग, शुल्बसूत्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, रसायन तथा वास्तुशास्त्र तक विस्तृत है। प्रमुख वैज्ञानिक परम्पराएँ—*

1.गणित

2.खगोल विज्ञान

3.आयुर्वेद

4.धातुविज्ञान

5.रसायन

6.वनस्पति विज्ञान

7.पर्यावरण विज्ञान

8.वास्तुशास्त्र

(ख) प्रमुख वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

1.शून्य एवं दशमलव प्रणाली

2.ग्रह-गति का अध्ययन

3.सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण का वैज्ञानिक विवेचन

4.शल्यचिकित्सा

5.औषध-विज्ञान

6.धातु विज्ञान

7.लौह स्तम्भ जैसी धातुकर्म उपलब्धियाँ

8.पर्यावरण-संतुलित स्थापत्य

(ग) प्रमुख वैज्ञानिक ग्रन्थ एवं आचार्य

1.आर्यभटीयम् — आर्यभट

2.ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त — ब्रह्मगुप्त

3.सिद्धान्तशिरोमणि — भास्कराचार्य

4.चरकसंहिता — चरक

5.सुश्रुतसंहिता — सुश्रुत

6.कश्यपसंहिता — कश्यप

(घ) विज्ञान का महत्त्व एवं योगदान

1.वैज्ञानिक चिन्तन का विकास

2.स्वास्थ्य एवं चिकित्सा का उत्थान

3.कृषि एवं पर्यावरण संरक्षण

4.गणित एवं खगोल विज्ञान का विकास

5.मानव जीवन को तर्क एवं प्रयोग पर आधारित बनाना

3. संस्कृत-वाङ्मय में संगीत

(क) संगीत की परम्परा: - भारतीय संगीत का मूल स्रोत सामवेद है। सामगान से भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा विकसित हुई। प्रमुख ग्रन्थ—

1.नाट्यशास्त्रम् — भरतमुनि

2.संगीतरत्नाकरः — शार्ङ्गदेव

3.बृहद्देशी — मतंग मुनि

(ख) संगीत का स्वरूप: - भारतीय परम्परा में संगीत के तीन अंग हैं—

1.गीत

2.वाद्य

3.नृत्य

भरतमुनि ने संगीत को नाट्य का प्राण माना है।

(ग) संगीत का महत्त्व

1.मानसिक शान्ति

2.आध्यात्मिक उन्नति

3.सांस्कृतिक संरक्षण

4.भक्ति आन्दोलन का आधार

5.राष्ट्रीय एकता का संवर्धन

4. समकालीन प्रासंगिकता

आज के युग में संस्कृत-वाङ्मय में निहित अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत की उपयोगिता अत्यन्त बढ़ गई है।

अर्थशास्त्र

1.सुशासन

2.आर्थिक नीति

3.भ्रष्टाचार नियन्त्रण

4.लोककल्याणकारी राज्य

5.आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा

विज्ञान

1.आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा

2.योग एवं स्वास्थ्य

3.पर्यावरण संरक्षण

4.गणित एवं अंतरिक्ष अनुसंधान

5.सतत् विकास

संगीत

1.मानसिक स्वास्थ्य

2.संगीत-चिकित्सा ***(Music Therapy)***

3.सांस्कृतिक संरक्षण

4.वैश्विक सांस्कृतिक संवाद

5.योग एवं ध्यान का अभिन्न अंग

5. भारतीय ज्ञान-परम्परा में समग्र योगदान

संस्कृत-वाङ्मय ने—

1.राष्ट्र को सुशासन का आदर्श दिया।

2.विश्व को शून्य एवं दशमलव प्रदान किया।

3.चिकित्सा-विज्ञान को आयुर्वेद दिया।

4.स्थापत्य एवं वास्तु का वैज्ञानिक आधार दिया।

5.संगीत को आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक ऊँचाई प्रदान की।

6.लोककल्याण एवं नैतिक जीवन का आदर्श स्थापित किया।

7. 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसे सार्वभौमिक आदर्श दिए।

उपसंहार

संस्कृत-वाङ्मय में निहित अर्थशास्त्र, विज्ञान एवं संगीत भारतीय सभ्यता की वैज्ञानिक दृष्टि, सांस्कृतिक समृद्धि एवं बौद्धिक उत्कृष्टता के सशक्त प्रमाण हैं। कौटिल्य का अर्थशास्त्र सुशासन एवं आर्थिक नीति का आदर्श प्रस्तुत करता है; आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, चरक एवं सुश्रुत की वैज्ञानिक परम्परा आधुनिक विज्ञान को दिशा प्रदान करती है; तथा सामवेद एवं भरतमुनि की संगीत परम्परा भारतीय संस्कृति की आत्मा है। आज जब विश्व सतत् विकास, समग्र स्वास्थ्य, नैतिक शासन एवं सांस्कृतिक समन्वय की खोज में है, तब संस्कृत-वाङ्मय में निहित यह ज्ञान-विज्ञान सम्पूर्ण मानवता के लिए अत्यन्त प्रासंगिक एवं प्रेरणादायक सिद्ध होता है।

प्रश्न-7. भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका का विवेचन कीजिए

अथवा

भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका की समीक्षा कीजिए

अथवा

भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका स्पष्ट/ प्रस्तुत कीजिए

अथवा

भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका पर प्रकाश डालिए

अथवा

भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका की समकालीन प्रासंगिकता स्पष्ट कीजिए

अथवा

भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय का महत्त्व स्पष्ट/ प्रस्तुत कीजिए

उत्तरः- भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका

प्रस्तावना

संस्कृत-वाङ्मय भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं ज्ञान-परम्परा का मूलाधार है। यह केवल एक भाषा का साहित्य नहीं, बल्कि भारत की आध्यात्मिक चेतना, सांस्कृतिक अस्मिता, नैतिक मूल्यों, वैज्ञानिक दृष्टि तथा राष्ट्रीय गौरव का प्रामाणिक स्रोत है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियाँ, दर्शन, काव्य, नाटक, आयुर्वेद, ज्योतिष, अर्थशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र जैसे संस्कृत ग्रन्थ भारतीय जीवन-दर्शन के विविध आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय संस्कृति की निरन्तरता एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान को सुरक्षित रखने में संस्कृत-वाङ्मय का योगदान अद्वितीय है।

1. भारतीय संस्कृति के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका

संस्कृत-वाङ्मय भारतीय संस्कृति का मूल संवाहक है। इसमें धर्म, दर्शन, नैतिकता, शिक्षा, परिवार, समाज, पर्यावरण, कला, विज्ञान तथा आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित आदर्शों का संरक्षण हुआ है।

संस्कृत साहित्य ने निम्नलिखित सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखा—

1.धर्म एवं कर्तव्यबोध

2. सत्य, अहिंसा एवं दया

3. गुरु-शिष्य परम्परा

4.परिवार एवं सामाजिक समरसता

5.नारी-सम्मान

6.प्रकृति-पूजन एवं पर्यावरण संरक्षण

7.लोकमंगल एवं विश्वबन्धुत्व

उपनिषदों का यह आदेश भारतीय संस्कृति का आधार है— 'सत्यं वद, धर्मं चर'(तैत्तिरीयोपनिषद्)।

2. राष्ट्रगौरव के संरक्षण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका

संस्कृत-वाङ्मय ने भारत को केवल सांस्कृतिक पहचान ही नहीं दी, बल्कि राष्ट्रीय एकता एवं आत्मगौरव की भावना को भी सुदृढ़ किया। राष्ट्रगौरव के प्रमुख आधार—

1.भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता का प्रतिपादन।

2.आदर्श राजधर्म एवं सुशासन की अवधारणा।

3.राष्ट्रधर्म एवं लोककल्याण की भावना।

4.भारतीय ज्ञान-विज्ञान का विकास।

5.वीरता, त्याग एवं कर्तव्यपरायणता का आदर्श।

रामायण मर्यादा एवं आदर्श शासन का, जबकि महाभारत धर्म, न्याय एवं राष्ट्रनीति का महान ग्रन्थ है।

3. संस्कृत-वाङ्मय का महत्त्व

संस्कृत-वाङ्मय का महत्त्व अनेक दृष्टियों से स्वीकार किया गया है—

(क) सांस्कृतिक महत्त्व

1.भारतीय परम्पराओं का संरक्षण।

2. संस्कार एवं नैतिक मूल्यों का संवर्धन।

3.भारतीय जीवन-दृष्टि का संवाहक।

(ख) दार्शनिक महत्त्व

1.आत्मा, ब्रह्म एवं मोक्ष का विवेचन।

2.कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त।

3. मानव जीवन के परम उद्देश्य का प्रतिपादन।

(ग) वैज्ञानिक महत्त्व

1.आयुर्वेद

2.योग

3.गणित

4.ज्योतिष

5.खगोल

6.वास्तुशास्त्र

7.पर्यावरणीय चिन्तन

(घ) साहित्यिक महत्त्व

1. विश्व का समृद्ध महाकाव्य-साहित्य।

2.उत्कृष्ट नाटक, काव्य एवं गद्य।

3.अलंकार, रस एवं काव्यशास्त्र का विकास।

4. संस्कृत-वाङ्मय का योगदान

संस्कृत साहित्य ने मानव सभ्यता को अनेक अमूल्य उपलब्धियाँ प्रदान की हैं—

सांस्कृतिक योगदान

1.भारतीय संस्कृति का संरक्षण।

2. राष्ट्रीय एकता का संवर्धन।

3. नैतिक मूल्यों की स्थापना।

शैक्षिक योगदान

1.गुरुकुल परम्परा।

2.समग्र शिक्षा-पद्धति।

3.चरित्र निर्माण।

वैज्ञानिक योगदान

1.शून्य एवं दशमलव प्रणाली।

2.आयुर्वेद एवं शल्यचिकित्सा।

3.योग एवं मानसिक स्वास्थ्य।

4.ज्योतिष एवं खगोल-विज्ञान।

5.पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा।

सामाजिक योगदान

1.वसुधैव कुटुम्बकम्,

2.सर्वे भवन्तु सुखिनः,

3.लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु, जैसे सार्वभौमिक मानवीय आदर्श।

5. समकालीन प्रासंगिकता

आज सम्पूर्ण विश्व अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है—पर्यावरण संकट, मानसिक तनाव, सांस्कृतिक विघटन, हिंसा, नैतिक पतन तथा उपभोक्तावाद। ऐसी स्थिति में संस्कृत-वाङ्मय की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।

वर्तमान समय में इसकी उपयोगिता

1.राष्ट्रीय शिक्षा नीति–**2020** में भारतीय ज्ञान-परम्परा का समावेश।

2.योग एवं आयुर्वेद की वैश्विक स्वीकृति।

3.पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास की प्रेरणा।

4.नैतिक शिक्षा एवं चरित्र निर्माण।

5.भारतीय संस्कृति के संरक्षण का सशक्त माध्यम।

6.विश्वशान्ति एवं मानव-कल्याण का मार्गदर्शन।

7. भारतीय भाषाओं एवं सांस्कृतिक विरासत का संवर्धन।

आज विश्व 'वसुधैव कुटुम्बकम्', योग, आयुर्वेद तथा भारतीय जीवन-दर्शन को अपनाने की दिशा में अग्रसर है। इससे संस्कृत-वाङ्मय की वैश्विक उपयोगिता सिद्ध होती है।

निष्कर्ष

संस्कृत-वाङ्मय भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रगौरव की आधारशिला है। इसमें निहित ज्ञान, दर्शन, विज्ञान, साहित्य एवं नैतिक मूल्य केवल भारत की धरोहर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता की अमूल्य सम्पत्ति हैं। भारतीय संस्कृति की निरन्तरता, राष्ट्रीय एकता, वैज्ञानिक चेतना तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को सुदृढ़ करने में संस्कृत-वाङ्मय का योगदान अनुपम है। वर्तमान युग में इसकी पुनर्स्थापना, संरक्षण एवं अध्ययन न केवल भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के लिए आवश्यक है, बल्कि विश्वशान्ति, सतत् विकास एवं मानव-कल्याण के लिए भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न: 8. वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय चिन्तन एवं सतत् विकास की अवधारणा पर संक्षेप में प्रकाश डालिए

अथवा

वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय चिन्तन एवं सतत् विकास की समीक्षा कीजिए

अथवा

वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय चिन्तन एवं सतत् विकास का विवेचन कीजिए

अथवा

वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय चिन्तन एवं सतत् विकास का महत्त्व स्पष्ट/ प्रस्तुत कीजिए

उत्तर:- *वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय चिन्तन एवं सतत विकास*

भूमिका

*भारतीय संस्कृति में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं, अपितु जीवन का आधार, देवस्वरूप तथा सह-अस्तित्व का प्रतीक माना गया है। वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, जिनमें मानव और प्रकृति के बीच संतुलित, नैतिक एवं आध्यात्मिक सम्बन्ध का अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन मिलता है। वर्तमान समय में जब प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता का ह्रास तथा प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध दोहन वैश्विक समस्या बन चुके हैं, तब वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय दृष्टि और सतत विकास **(Sustainable Development)** की अवधारणा अत्यन्त प्रासंगिक सिद्ध होती है।*

पर्यावरण की अवधारणा

'पर्यावरण' शब्द 'परि + आवरण' से बना है, जिसका अर्थ है—चारों ओर से घेरने वाला वातावरण। इसमें पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, वनस्पति, जीव-जंतु तथा सम्पूर्ण जैव-मण्डल सम्मिलित हैं।

*वेदों में सम्पूर्ण सृष्टि को एक परिवार माना गया है- **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः** (अथर्ववेद 12.1.12), अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।*

वैदिक साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन

1. पृथ्वी संरक्षण:- *अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के प्रति आदर, संरक्षण और संवर्धन का संदेश दिया गया है- माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। यह मन्त्र पृथ्वी के प्रति उत्तरदायित्व का भाव उत्पन्न करता है।*

2. जल संरक्षण:- *ऋग्वेद में जल को अमृत एवं जीवनदाता कहा गया है- आपो हि ष्ठा मयोभुवः। (ऋग्वेद 10.9.1), अर्थात् जल सुख एवं कल्याण प्रदान करने वाला है। जल का संरक्षण, शुद्धता तथा संतुलित उपयोग वैदिक संस्कृति का मूल सिद्धान्त है।*

3. वायु संरक्षण:- *वायु को प्राण माना गया है- वात आ वातु भेषजम्(ऋग्वेद 10.186.1), अर्थात् वायु हमारे लिए औषधि एवं स्वास्थ्यवर्धक बने।*

4. वन एवं वृक्ष संरक्षण:- *वेदों में वृक्षों को जीवनदाता तथा पर्यावरण-संतुलन का आधार माना गया है। वृक्ष वर्षा, शुद्ध वायु, औषधि तथा जैव-विविधता के संरक्षण में सहायक हैं।*

5. जैव-विविधता का संरक्षण:- *वैदिक साहित्य में सभी प्राणियों के प्रति करुणा एवं सह-अस्तित्व का भाव मिलता है- सर्वे भवन्तु सुखिनः। यद्यपि यह वैदिक मन्त्र नहीं, तथापि वैदिक संस्कृति के सार्वभौमिक कल्याण-भाव का प्रतिनिधित्व करता है।*

6. यज्ञ और पर्यावरण:- *वेदों में यज्ञ को केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन एवं लोककल्याण का माध्यम माना गया है- सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा। (भगवद्गीता 3.10),यज्ञ का मूल उद्देश्य प्रकृति के साथ संतुलित जीवन और परस्पर सहयोग की भावना है।*

सतत विकास *(Sustainable Development)* की वैदिक अवधारणा

सतत विकास का अर्थ है—वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति इस प्रकार करना कि भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। यह सिद्धान्त वेदों में विभिन्न रूपों में मिलता है—

1. संसाधनों का संयमित उपयोग:- *प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता अनुसार उपयोग तथा उनका संरक्षण।*

2. प्रकृति के प्रति कृतज्ञता:- *प्रकृति का शोषण नहीं, बल्कि सम्मान एवं संरक्षण।*

3. सह-अस्तित्व:-*मानव, पशु-पक्षी, वनस्पति एवं समस्त जीव-जगत का सामंजस्यपूर्ण जीवन।*

4. लोककल्याण:- *व्यक्ति नहीं, सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की भावना- सर्वे भवन्तु सुखिनः।*

वैदिक पर्यावरण-दर्शन और संयुक्त राष्ट्र के *SDGs*

*वैदिक विचार आधुनिक **Sustainable Development Goals (SDGs)** से अत्यन्त साम्य रखते हैं—*

***1. SDG** 6 – स्वच्छ जल एवं स्वच्छता।*

***2. SDG** 13 – जलवायु परिवर्तन पर कार्यवाही।*

***3. SDG** 14 – जल-जीवन का संरक्षण।*

***4. SDG** 15 – स्थलीय पारिस्थितिकी एवं वनों का संरक्षण।*

***5. SDG** 3 – स्वस्थ जीवन।*

वर्तमान समय में प्रासंगिकता

आज विश्व अनेक पर्यावरणीय संकटों से जूझ रहा है—

1.जलवायु परिवर्तन

2.ग्लोबल वार्मिंग

3.वनों की कटाई

4.वायु एवं जल प्रदूषण

5.जैव-विविधता का ह्रास

इन समस्याओं के समाधान हेतु वैदिक दृष्टिकोण अत्यन्त उपयोगी है—

1.वृक्षारोपण

2.जल संरक्षण

3.प्रदूषण नियंत्रण

प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग

1.पर्यावरण शिक्षा

2.प्रकृति के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व

उपसंहार

वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय चिन्तन केवल धार्मिक या दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि वैज्ञानिक, नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन-दर्शन है। वेद मानव को प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका संरक्षक **(Custodian)** मानते हैं। आज के वैश्विक पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु वैदिक सिद्धान्त—प्रकृति के प्रति श्रद्धा, संयमित उपभोग, सह-अस्तित्व तथा लोककल्याण—अत्यन्त प्रासंगिक हैं। यदि मानव इन आदर्शों को अपने जीवन में अपनाए, तो सतत विकास के लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

प्रश्न:9. संस्कृत काव्य एवं व्याकरण का सामान्य परिचय तथा पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिए

अथवा

संस्कृत काव्य एवं संस्कृत व्याकरण के पारस्परिक सम्बन्ध की समीक्षा कीजिए

अथवा

संस्कृत काव्य एवं संस्कृत व्याकरण के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालिए

अथवा

संस्कृत काव्य एवं संस्कृत व्याकरण के पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट/ प्रस्तुत कीजिए

उत्तर:-संस्कृत काव्य एवं व्याकरण का सामान्य परिचय तथा पारस्परिक सम्बन्ध

भूमिका

संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम एवं सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषाओं में से एक है। इसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध एवं विविधतापूर्ण है। संस्कृत साहित्य के दो प्रमुख आधार काव्य और व्याकरण हैं। काव्य जहाँ भाव, कल्पना और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है, वहीं व्याकरण भाषा की शुद्धता, व्यवस्था एवं वैज्ञानिकता का आधार है। व्याकरण के बिना काव्य की भाषा शुद्ध नहीं रह सकती तथा काव्य के बिना व्याकरण का व्यावहारिक सौन्दर्य प्रकट नहीं होता। अतःदोनों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित एवं परस्पर पूरकहै।

संस्कृत काव्य का सामान्य परिचय

'काव्य' शब्द का सामान्य अर्थ है—रस, भाव, कल्पना एवं अलंकारों से युक्त रमणीय साहित्य।

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में कहा है— तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।

अर्थात् दोषरहित, गुणयुक्त तथा शब्द और अर्थ से युक्त रचना ही काव्य है।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में कहा है-वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। अर्थात् रसयुक्त वाक्य ही काव्य है।

संस्कृत काव्य के प्रमुख भेद

***1.** दृश्य काव्य – जैसे नाटक।*

***2.** श्रव्य काव्य – जैसे महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य आदि।*

संस्कृत के प्रमुख कवि

महर्षि वाल्मीकि,महर्षि व्यास,कालिदास,भारवि,माघ,श्रीहर्ष,भर्तृहरि,भवभूति आदि।

संस्कृत व्याकरण का सामान्य परिचय

'व्याकरण' शब्द 'वि + आ + कृ + ल्युट्' से बना है, जिसका अर्थ है—भाषा का विश्लेषण एवं शुद्ध प्रयोग का शास्त्र।

व्याकरण का उद्देश्य शब्दों के शुद्ध रूप, वाक्य-रचना तथा भाषा की शुद्धता का ज्ञान कराना है।

आचार्य पतञ्जलि ने कहा है— रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।

संस्कृत व्याकरण के प्रमुख आचार्य

पाणिनि,कात्यायन,पतञ्जलि,भट्टोजि दीक्षित,नागेशभट्ट आदि।

प्रमुख व्याकरण ग्रन्थ

अष्टाध्यायी,महाभाष्य,सिद्धान्तकौमुदी,लघुसिद्धान्तकौमुदी

संस्कृत काव्य एवं व्याकरण का पारस्परिक सम्बन्ध

संस्कृत काव्य और व्याकरण का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ एवं अविभाज्य है-

*1. **व्याकरण काव्य का आधार है**: - व्याकरण भाषा को शुद्ध बनाता है। शुद्ध भाषा के बिना श्रेष्ठ काव्य की रचना सम्भव नहीं।*

***2. काव्य व्याकरण का सौन्दर्य है**: - व्याकरण केवल नियमों का शास्त्र है, किन्तु काव्य उन नियमों को सौन्दर्य, रस और जीवन प्रदान करता है।*

***3. शब्द और अर्थ की शुद्धता**: - व्याकरण शब्दों के शुद्ध रूप का ज्ञान कराता है, जबकि काव्य उन्हीं शब्दों द्वारा रस एवं भाव की अभिव्यक्ति करता है।*

***4. अलंकार एवं समास का प्रयोग**: - संस्कृत काव्य में समास, सन्धि, धातु, प्रत्यय आदि का प्रयोग व्याकरण के नियमों के अनुसार ही होता है।*

***5. अर्थ की स्पष्टता**: - व्याकरण के ज्ञान से काव्य का सही अर्थ समझने में सुविधा होती है। बिना व्याकरण के काव्य की व्याख्या अधूरी रह जाती है।*

***6. कवि और वैयाकरण**: - श्रेष्ठ कवि के लिए व्याकरण का ज्ञान अनिवार्य है तथा श्रेष्ठ वैयाकरण को भी काव्य का ज्ञान होना चाहिए।*

***उदाहरण**: - कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति आदि महाकवियों के काव्यों में व्याकरण की शुद्धता तथा भाषा का उत्कृष्ट सौन्दर्य देखने को मिलता है।*

इसी प्रकार पाणिनि के व्याकरण के कारण संस्कृत भाषा आज भी अत्यन्त वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित मानी जाती है।

काव्य और व्याकरण का तुलनात्मक स्वरूप

काव्य	व्याकरण
भावप्रधान	नियमप्रधान
रस एवं सौन्दर्य का माध्यम	भाषा की शुद्धता का आधार
कल्पना पर आधारित	तर्क एवं नियम पर आधारित
हृदय को आनन्द देता है	बुद्धि को स्पष्टता प्रदान करता है
साहित्य का सौन्दर्य	भाषा का विज्ञान

महत्त्व

1.भाषा की शुद्धता बनाए रखते हैं।

2.साहित्य की उत्कृष्टता में सहायक हैं।

3.अर्थबोध को सरल बनाते हैं।

4.भारतीय संस्कृति एवं ज्ञान-परम्परा की रक्षा करते हैं।

5.संस्कृत भाषा को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करते हैं।

उपसंहार

संस्कृत काव्य और व्याकरण एक-दूसरे के पूरक हैं। व्याकरण भाषा को शुद्ध, व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक बनाता है, जबकि काव्य उसी भाषा को सौन्दर्य, रस, भाव और जीवन प्रदान करता है। दोनों के समन्वय से ही संस्कृत साहित्य अपनी उत्कृष्टता प्राप्त करता है। इसलिए कहा जा सकता है कि व्याकरण संस्कृत भाषा का आधार है और काव्य उसका अलंकार। दोनों के समन्वित अध्ययन से ही संस्कृत साहित्य का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रश्न: *10.* ***संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि के योगदान का संक्षिप्त परिचय दीजिए***

अथवा

संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि के योगदान का विवेचन कीजिए

अथवा

संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि के योगदान की समीक्षा कीजिए

अथवा

संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि के योगदान स्पष्ट/ प्रस्तुत कीजिए

अथवा

संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि के योगदान पर प्रकाश डालिए

उत्तर:- संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि का योगदान

भूमिका

संस्कृत भाषा विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित भाषाओं में से एक है। इसकी शुद्धता, नियमबद्धता तथा वैज्ञानिक स्वरूप का मुख्य आधार इसकी समृद्ध व्याकरण-परम्परा है। इस परम्परा के विकास में आचार्य पाणिनि, आचार्य कात्यायन तथा महर्षि पतञ्जलि का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन तीनों आचार्यों को संयुक्त रूप से "मुनित्रय" कहा जाता है। पाणिनि ने व्याकरण के मूल सूत्रों की रचना की, कात्यायन ने उन पर वार्तिक लिखकर आवश्यक संशोधन एवं स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया तथा पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना कर सम्पूर्ण व्याकरण-परम्परा को दार्शनिक एवं भाषावैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

1. आचार्य पाणिनि का योगदान

आचार्य पाणिनि संस्कृत के महानतम वैयाकरण माने जाते हैं। उनका समय सामान्यतः ईसा पूर्व पाँचवीं–चौथी शताब्दी माना जाता है।

प्रमुख ग्रन्थ: *अष्टाध्यायी*

अष्टाध्यायी की विशेषताएँ

1.*लगभग ३९५९ (परम्परागत गणना में लगभग ४०००) सूत्र।*

2.*आठ अध्यायों में विभाजित।*

3.*प्रत्येक अध्याय चार पादों में विभक्त।*

4.*अत्यन्त संक्षिप्त, वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत शैली।*

पाणिनि का योगदान

1.*संस्कृत भाषा के ध्वनि, शब्द, रूप एवं वाक्य-रचना का वैज्ञानिक विश्लेषण।*

2.*धातुपाठ एवं गणपाठ का सुव्यवस्थित निर्माण।*

3.प्रत्यय, समास, सन्धि तथा रूप-निर्माण के स्पष्ट नियम।

*4.भाषा को मानकीकृत **(Standardized)** स्वरूप प्रदान किया।*

5.विश्व के भाषाविज्ञान को नई दिशा दी।

2. आचार्य कात्यायन का योगदान

आचार्य कात्यायन पाणिनि के प्रमुख व्याख्याकार माने जाते हैं।

***प्रमुख ग्रन्थ:** वार्तिक*

वार्तिक का स्वरूप

वार्तिक का प्रसिद्ध लक्षण है—

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिण:॥

अर्थ: जहाँ पाणिनि के सूत्रों में कहे गए, न कहे गए तथा अस्पष्ट कथनों का विचार किया जाता है, उसे वार्तिक कहते हैं।

कात्यायन का योगदान

***1.**पाणिनि के सूत्रों का स्पष्टीकरण।*

***2.**आवश्यक संशोधन एवं परिष्कार।*

***3.**जहाँ आवश्यकता हुई, वहाँ नए नियमों का प्रतिपादन।*

***4.**व्याकरण को अधिक व्यावहारिक एवं सुगम बनाया।*

***5.**पाणिनीय परम्परा को आगे विकसित किया।*

3. महर्षि पतञ्जलि का योगदान

महर्षि पतञ्जलि संस्कृत व्याकरण-परम्परा के महान भाष्यकार हैं।

***प्रमुख ग्रन्थ:** महाभाष्य*

महाभाष्य की विशेषताएँ

***1.**पाणिनि के सूत्रों एवं कात्यायन के वार्तिकों पर विस्तृत भाष्य।*

***2.**व्याकरण के साथ दर्शन, तर्क एवं व्यवहार का समन्वय।*

***3.**भाषा के प्रयोग एवं शुद्धता का व्यावहारिक विवेचन।*

पतञ्जलि का योगदान

***1.**व्याकरण को दार्शनिक आधार प्रदान किया।*

***2.**भाषा-प्रयोग की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान किया।*

***3.**शब्द, अर्थ एवं प्रयोग के सम्बन्ध का गम्भीर विवेचन।*

***4.**वेदों की रक्षा हेतु व्याकरण की अनिवार्यता पर बल दिया। उनका प्रसिद्ध कथन है—रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। अर्थात् वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है।*

मुनित्रय का सामूहिक योगदान

1.संस्कृत भाषा का मानकीकरण।

2.व्याकरण को वैज्ञानिक एवं तर्कसंगत स्वरूप प्रदान करना।

3.भाषा की शुद्धता एवं एकरूपता की स्थापना।

4.भारतीय भाषाविज्ञान की सुदृढ़ परम्परा का निर्माण।

5.वेद, दर्शन, काव्य तथा शास्त्रों के अध्ययन के लिए दृढ़ आधार प्रदान करना।

6.विश्व भाषाविज्ञान को महत्त्वपूर्ण योगदान देना।

तुलनात्मक सारणी

आचार्य	प्रमुख ग्रन्थ	मुख्य योगदान
पाणिनि	अष्टाध्यायी	व्याकरण के मूल सूत्रों की रचना एवं भाषा का वैज्ञानिक स्वरूप
कात्यायन	वार्तिक	पाणिनीय सूत्रों का संशोधन, स्पष्टीकरण एवं परिष्कार
पतञ्जलि	महाभाष्य	सूत्र एवं वार्तिक पर भाष्य, दार्शनिक एवं व्यावहारिक विवेचन

व्याकरण-परम्परा का महत्त्व

1.संस्कृत भाषा की शुद्धता की रक्षा।

2.साहित्य एवं वेदों के अध्ययन में सहायता।

3.भाषा को वैज्ञानिक आधार प्रदान करना।

4.भारतीय ज्ञान-परम्परा का संरक्षण।

5.आधुनिक भाषाविज्ञान के विकास में प्रेरणास्रोत।

उपसंहार

संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि का योगदान अद्वितीय एवं अमूल्य है। पाणिनि ने व्याकरण की आधारशिला रखी, कात्यायन ने उसका परिष्कार किया तथा पतञ्जलि ने उसे दार्शनिक एवं व्यावहारिक दृढ़ता प्रदान की। इन तीनों के संयुक्त प्रयासों से संस्कृत व्याकरण विश्व की सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक वैज्ञानिक व्याकरण-प्रणालियों में प्रतिष्ठित हुआ। अतः मुनित्रय का योगदान भारतीय भाषाविज्ञान और संस्कृत साहित्य के इतिहास में सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

प्रश्न:11. महर्षि वाल्मीकि का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रस्तुत कीजिए

अथवा

महर्षि वाल्मीकि का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए

अथवा

महर्षि वाल्मीकि का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व एवं भारतीय संस्कृति में उनके योगदान का संक्षिप्त विवेचन/समीक्षा कीजिए

उत्तर:- महर्षि वाल्मीकि का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भूमिका

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत साहित्य के आदि कवि तथा रामायण के रचयिता हैं। उन्होंने भगवान श्रीराम के आदर्श जीवन का काव्यमय चित्रण कर भारतीय संस्कृति, धर्म, नीति और आदर्शों को अमर बना दिया। उनके द्वारा रचित रामायण विश्व का प्रथम महाकाव्य माना जाता है, इसलिए उन्हें "आदिकवि" कहा जाता है।

1. महर्षि वाल्मीकि का जीवनवृत्त

महर्षि वाल्मीकि के जीवन के संबन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण अल्प उपलब्ध हैं। परम्परा के अनुसार उनका प्रारम्भिक नाम रत्नाकर था। वे प्रारम्भ में वन में रहने वाले एक शिकारी अथवा दस्यु थे। एक दिन महर्षि नारद के उपदेश से उनका हृदय परिवर्तित हुआ। उन्होंने "राम" नाम का जप करते हुए कठोर तपस्या की। दीर्घकाल तक तप में लीन रहने के कारण उनके शरीर पर दीमकों का टीला (वल्मीक) बन गया। उसी कारण उनका नाम वाल्मीकि पड़ा। एक बार उन्होंने क्रौञ्च पक्षी के वध से व्यथित होकर करुणा से प्रेरित होकर प्रथम श्लोक की रचना की—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

इसी श्लोक से संस्कृत काव्य की श्लोक-परम्परा का आरम्भ माना जाता है।

2. महर्षि वाल्मीकि का व्यक्तित्व

महर्षि वाल्मीकि का व्यक्तित्व अत्यन्त महान एवं प्रेरणादायक था-

(1) महान तपस्वी: - उन्होंने कठोर तपस्या द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त की और ऋषि-पद को प्राप्त किया।

(2) करुणामूर्ति: - क्रौञ्च पक्षी के वध पर उनकी करुणा से ही प्रथम श्लोक का जन्म हुआ।

(3) आदर्श कवि: - उन्होंने राम के चरित्र का अत्यन्त मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण किया।

(4) समाज-सुधारक: - उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से सत्य, धर्म, मर्यादा, त्याग और आदर्श जीवन का संदेश दिया।

(5) दूरदर्शी महर्षि: - उन्होंने केवल तत्कालीन समाज का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए आदर्श जीवन-मूल्यों का प्रतिपादन किया।

3. महर्षि वाल्मीकि का कृतित्व

(क) **रामायण**: - महर्षि वाल्मीकि की सर्वश्रेष्ठ एवं विश्वप्रसिद्ध कृति 'रामायण' है।

रामायण की विशेषताएँ

1. संस्कृत का प्रथम महाकाव्य।

2. लगभग **24,000** श्लोक।

3. **7** काण्ड।

4. लगभग **500** सर्ग।

5. भगवान श्रीराम के आदर्श जीवन का वर्णन।

6. धर्म, नीति, आदर्श, त्याग एवं मर्यादा का उत्कृष्ट चित्रण।

सात काण्ड

1. बालकाण्ड

2. अयोध्याकाण्ड

3. अरण्यकाण्ड

4. किष्किन्धाकाण्ड

5. सुन्दरकाण्ड

6. युद्धकाण्ड

7. उत्तरकाण्ड

***(ख) आदिकाव्य की रचना**: - वाल्मीकि की रामायण को 'आदिकाव्य' कहा जाता है, क्योंकि यह संस्कृत का प्रथम महाकाव्य है।*

***(ग) लव-कुश को शिक्षा**: - महर्षि वाल्मीकि ने अपने आश्रम में लव एवं कुश का पालन-पोषण किया तथा उन्हें रामायण का अध्ययन कराया।*

महर्षि वाल्मीकि का साहित्यिक योगदान

1.संस्कृत के प्रथम महाकाव्य की रचना।

2.श्लोक छन्द का प्रारम्भ।

3.आदर्श चरित्रों का सजीव चित्रण।

4.भारतीय संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों का संरक्षण।

5.धर्म, नीति एवं लोकमंगल का संदेश।

महर्षि वाल्मीकि की काव्य-शैली

1.सरल एवं प्रभावशाली भाषा।

2.प्रसादगुण एवं माधुर्यगुण की प्रधानता।

3.प्रकृति का सजीव चित्रण।

4.रसों का संतुलित प्रयोग, विशेषतः करुण एवं वीर रस।

5.चरित्र-चित्रण की अद्भुत क्षमता।

भारतीय संस्कृति पर प्रभाव

1.श्रीराम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के रूप में प्रतिष्ठित किया।

2.भारतीय साहित्य, कला, नाटक एवं लोकजीवन को गहराई से प्रभावित किया।

3.अनेक भाषाओं के रामकाव्यों की प्रेरणा बने।

4.नैतिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना की।

उपसंहार

महर्षि वाल्मीकि केवल संस्कृत के महान कवि ही नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के अमर निर्माता भी हैं। उन्होंने रामायण के माध्यम से सत्य, धर्म, त्याग, करुणा और मर्यादा का ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया, जो आज भी सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणास्रोत है। आदिकवि के रूप में उनका स्थान संस्कृत साहित्य में सर्वोच्च है तथा उनका कृतित्व भारतीय ज्ञान-परम्परा की अमूल्य धरोहर है।

प्रश्न:12.महर्षि वेदव्यास का जीवनवृत्त एवं भारतीय संस्कृति में उनके योगदान का संक्षिप्त विवेचन कीजिए

अथवा

महर्षि वेदव्यास का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए

अथवा

महर्षि वेदव्यास का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रस्तुत कीजिए

उत्तर:- महर्षि वेदव्यास का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा भारतीय संस्कृति में योगदान

भूमिका

महर्षि वेदव्यास भारतीय ज्ञान-परम्परा के महानतम ऋषियों, दार्शनिकों तथा साहित्यकारों में अग्रगण्य हैं। उन्हें "व्यास", "कृष्ण द्वैपायन" तथा "बादरायण" के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने वेदों का विभाजन, महाभारत की रचना, अठारह पुराणों की रचना तथा ब्रह्मसूत्र का प्रणयन करके भारतीय संस्कृति, दर्शन, धर्म एवं साहित्य को अमूल्य धरोहर प्रदान की। भारतीय परम्परा में उन्हें "व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" अर्थात् "सारा संसार व्यास के ज्ञान से अनुप्राणित है" कहकर सम्मानित किया गया है।

1. महर्षि वेदव्यास का जीवनवृत्त

महर्षि वेदव्यास महर्षि पराशर तथा सत्यवती के पुत्र थे। उनका जन्म यमुना नदी के मध्य एक द्वीप पर हुआ था, इसलिए वे द्वैपायन कहलाए। उनका वर्ण श्याम होने के कारण उन्हें कृष्ण द्वैपायन भी कहा गया। उन्होंने कठोर तप, अध्ययन एवं मनन के द्वारा वेद, उपनिषद्, इतिहास तथा दर्शन का गहन ज्ञान प्राप्त किया। मानव-कल्याण की भावना से उन्होंने विशाल वैदिक ज्ञान को व्यवस्थित रूप प्रदान किया।

2. महर्षि वेदव्यास का व्यक्तित्व

महर्षि वेदव्यास का व्यक्तित्व अत्यन्त विराट एवं बहुआयामी था-

***(1) महान ऋषि एवं तपस्वी**: - वे उच्चकोटि के तपस्वी एवं आत्मज्ञानी महर्षि थे।*

***(2) महान साहित्यकार**: - उन्होंने विश्व का सबसे विशाल महाकाव्य महाभारत रचा।*

***(3) दार्शनिक**: - उन्होंने ब्रह्मसूत्र की रचना कर वेदान्त दर्शन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया।*

***(4) धर्मोपदेशक**: - उन्होंने धर्म, सत्य, न्याय, कर्तव्य और लोकमंगल का उपदेश दिया।*

***(5) लोकहितैषी**: - उन्होंने ज्ञान को समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचाने का महान कार्य किया।*

3. महर्षि वेदव्यास का कृतित्व

(क) वेदों का विभाजन: - महर्षि वेदव्यास ने एक विशाल वेद को चार भागों में विभाजित किया—

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. सामवेद
4. अथर्ववेद, इसी महान कार्य के कारण वे "वेदव्यास" कहलाए।

(ख) महाभारत: - महर्षि वेदव्यास की सर्वश्रेष्ठ कृति महाभारत है।

महाभारत की विशेषताएँ

1. विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य।
2. लगभग एक लाख श्लोक।
3. 18 पर्व।
4. धर्म, नीति, राजनीति, दर्शन एवं मानव जीवन का विश्वकोश।
5. महाभारत में ही श्रीमद्भगवद्गीता का दिव्य उपदेश प्राप्त होता है।

(ग) अठारह पुराण: - महर्षि वेदव्यास को अठारह महापुराणों का रचयिता माना जाता है। इनमें प्रमुख हैं—

1. श्रीमद्भागवत महापुराण
2. विष्णु पुराण
3. शिव पुराण
4. ब्रह्म पुराण
5. पद्म पुराण
6. नारद पुराण आदि।

(घ) ब्रह्मसूत्र: - वेदान्त दर्शन का आधारभूत ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र महर्षि वेदव्यास की अमूल्य देन है।

4. भारतीय संस्कृति में महर्षि वेदव्यास का योगदान

(1) वैदिक ज्ञान का संरक्षण: - उन्होंने वेदों का विभाजन कर उन्हें सुरक्षित एवं सुगम बनाया।

(2) धर्म एवं नीति का प्रचार: - महाभारत के माध्यम से धर्म, सत्य, न्याय, कर्तव्य और आदर्श जीवन का संदेश दिया।

(3) भगवद्गीता का प्रसार: - महाभारत में निहित श्रीमद्भगवद्गीता सम्पूर्ण मानवता के लिए आध्यात्मिक एवं नैतिक जीवन का मार्गदर्शक ग्रन्थ है।

(4) भारतीय दर्शन का विकास: - ब्रह्मसूत्र के माध्यम से वेदान्त दर्शन को दार्शनिक आधार प्रदान किया।

(5) पुराण-साहित्य का विकास: - पुराणों के माध्यम से भारतीय इतिहास, संस्कृति, धर्म, तीर्थ, व्रत एवं लोकपरम्पराओं का संरक्षण किया।

(6) राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता: - उनकी रचनाओं ने भारत की विविध धार्मिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक परम्पराओं को एक सूत्र में बाँधने का कार्य किया।

(7) ***नैतिक जीवन-मूल्यों की स्थापना****: - उन्होंने सत्य, धर्म, त्याग, संयम, करुणा, कर्तव्य एवं लोकमंगल जैसे जीवन-मूल्यों को प्रतिष्ठित किया।*

महर्षि वेदव्यास की साहित्यिक विशेषताएँ

1.*सरल, प्रभावशाली एवं ओजस्वी भाषा।*

2.*गम्भीर दार्शनिक चिन्तन।*

3.*धर्म एवं नीति का उत्कृष्ट निरूपण।*

4.*मानव-जीवन का यथार्थ चित्रण।*

5.*ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय।*

6.*लोकमंगल की भावना।*

महर्षि वेदव्यास का स्थायी प्रभाव

1.*भारतीय धर्म एवं दर्शन के प्रमुख आधार।*

2.*वेदान्त परम्परा के मूल आचार्य।*

3.*भारतीय साहित्य के महान निर्माता।*

4.*सनातन संस्कृति के संरक्षक।*

5.*गुरु-परम्परा के आदर्श प्रवर्तक (इसी कारण गुरु पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा भी कहा जाता है।)*

उपसंहार

महर्षि वेदव्यास भारतीय संस्कृति के अमर ऋषि, महान दार्शनिक, महाकवि तथा विश्वविख्यात साहित्यकार हैं। उन्होंने वेदों का विभाजन, महाभारत, ब्रह्मसूत्र तथा पुराणों की रचना द्वारा भारतीय ज्ञान-परम्परा को समृद्ध बनाया। उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म, ज्ञान, भक्ति, नीति और लोककल्याण के आदर्श आज भी सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणास्रोत हैं। भारतीय संस्कृति, दर्शन और संस्कृत साहित्य में महर्षि वेदव्यास का स्थान सर्वोच्च एवं चिरस्मरणीय है।

विशेष प्रश्न: -13. महाभारत के विषय में कहा जाता है— "यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्"। *अर्थात्- जो कुछ महाभारत में है, वह अन्यत्र भी मिल सकता है; परन्तु जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।.....उक्ति का आशय स्पष्ट कीजिए ।*

उत्तर:- *यह प्रसिद्ध उक्ति महाभारत की व्यापकता, सर्वसमावेशी स्वरूप तथा ज्ञान-समृद्धि को व्यक्त करती है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत केवल एक युद्ध-कथा नहीं है, बल्कि यह भारतीय जीवन, संस्कृति, धर्म, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, नैतिकता तथा मानव-मनोविज्ञान का विशाल विश्वकोश है।*

महाभारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इसमें राजधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म, नीति, न्याय, कूटनीति, शिक्षा, परिवार, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, स्त्री-पुरुष कर्तव्य, समाज-व्यवस्था तथा आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वित वर्णन है। इसी ग्रन्थ में श्रीमद्भगवद्गीता जैसा विश्वविख्यात दार्शनिक ग्रन्थ भी समाहित है।

इसलिए महाभारत को भारतीय संस्कृति, दर्शन और जीवन-दर्शन का विश्वकोश ***(Encyclopedia of Indian Culture)*** *कहा जाता है। यही कारण है कि इसके विषय में कहा गया है—* ***यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।*** *अर्थात् महाभारत में मानव जीवन से सम्बन्धित लगभग सभी विषयों का समावेश है; जो इसमें नहीं है, वह अन्यत्र भी दुर्लभ है।*

प्रश्न: -14. महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए

अथवा

महाकवि कालिदास का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा कीजिए

अथवा

महाकवि कालिदास का जीवन-परिचय तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान का परिचय दीजिए

अथवा

महाकवि कालिदास का जीवन-परिचय तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान पर प्रकाश डालिए

उत्तर:- महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा साहित्यिक योगदान व वैशिष्ट्य

भूमिका

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि एवं नाटककार माने जाते हैं। उन्हें "कविकुलगुरु", "भारत का शेक्सपियर" तथा "उपमा-सम्राट" के रूप में सम्मानित किया जाता है। उनकी रचनाओं में प्रकृति, प्रेम, संस्कृति, धर्म, दर्शन एवं मानव जीवन का अत्यन्त मनोहर चित्रण मिलता है। संस्कृत साहित्य में उनका स्थान सर्वोच्च है।

1. महाकवि कालिदास का जीवनवृत्त

महाकवि कालिदास के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य कम उपलब्ध हैं। अधिकांश विद्वानों के अनुसार वे गुप्तकाल (चौथी–पाँचवीं शताब्दी ई.) में सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के राजदरबार के नवरत्नों में प्रमुख थे।

लोककथा के अनुसार कालिदास प्रारम्भ में अल्पज्ञ थे, किन्तु देवी काली की कृपा से उन्हें अद्भुत विद्वत्ता प्राप्त हुई और वे संस्कृत के महानतम कवि बन गए। यद्यपि यह कथा ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित नहीं है, तथापि भारतीय जनश्रुति में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

2. महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व

महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व अत्यन्त बहुआयामी एवं प्रभावशाली था-

(1) महान कवि एवं नाटककार*: - उन्होंने महाकाव्य, गीतिकाव्य तथा नाटक—तीनों क्षेत्रों में अमर कृतियाँ प्रदान कीं।*

(2) प्रकृति-प्रेमी*: -उनकी रचनाओं में पर्वत,नदी,वन,ऋतुएँ,पुष्प एवं पशु-पक्षियों का अत्यन्त सजीव चित्रण मिलता है।*

(3) भारतीय संस्कृति के उपासक*: - उन्होंने भारतीय धर्म, संस्कृति, पारिवारिक आदर्श एवं लोकजीवन का उत्कृष्ट चित्रण किया।*

(4) रसज्ञ कवि: - उनके काव्य में विशेष रूप से श्रृंगार, करुण तथा शान्त रस की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है।

(5) आदर्श मानवतावादी: - उनकी रचनाओं में मानव जीवन के उच्च आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों का निरूपण है।

3. महाकवि कालिदास का कृतित्व

महाकवि कालिदास ने महाकाव्य, नाटक तथा खण्डकाव्य की रचना की-

(क) महाकाव्य

1. रघुवंशम्
2. कुमारसम्भवम्

(ख) खण्डकाव्य

1. मेघदूतम्
2. ऋतुसंहारः

(ग) नाटक

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
2. विक्रमोर्वशीयम्
3. मालविकाग्निमित्रम्

4. महाकवि कालिदास का साहित्यिक योगदान

(1) संस्कृत साहित्य का उत्कर्ष: - कालिदास ने संस्कृत काव्य एवं नाटक को विश्व-स्तरीय प्रतिष्ठा प्रदान की।

(2) महाकाव्य परम्परा का विकास: - रघुवंश एवं कुमारसम्भव संस्कृत महाकाव्य-परम्परा के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

(3) नाट्य साहित्य का विकास: - अभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व का सर्वश्रेष्ठ संस्कृत नाटक माना जाता है।

(4) प्रकृति-चित्रण: - कालिदास को प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ चितेरा माना जाता है।

(5) भारतीय संस्कृति का प्रचार: - उनकी रचनाओं में धर्म, नीति, आदर्श, परिवार एवं राष्ट्रप्रेम का उत्कृष्ट चित्रण है।

(6) विश्व साहित्य पर प्रभाव: - उनकी रचनाओं का अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ। जर्मन कवि गोएथे **(Goethe)** ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् की अत्यधिक प्रशंसा की।

5. महाकवि कालिदास की साहित्यिक विशेषताएँ (वैशिष्ट्य)

(1) उपमा का अनुपम प्रयोग: - कालिदास को "उपमा कालिदासस्य" कहा गया है।

(2) प्रकृति का मानवीकरण: - उन्होंने प्रकृति को मानवीय भावनाओं से युक्त करके चित्रित किया है।

(3) सरल एवं मधुर भाषा: - उनकी भाषा प्रसाद, माधुर्य एवं वैदर्भी रीति से युक्त है।

(4) रस-निरूपण: - विशेषतः श्रृंगार रस का अत्यन्त उत्कृष्ट चित्रण मिलता है।

(5) चरित्र-चित्रण: - दुष्यन्त, शकुन्तला, पार्वती, शिव, रघु, दिलीप आदि पात्रों का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण।

(6) अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग: - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का सहज एवं कलात्मक प्रयोग।

(7) भाव एवं कला का समन्वय: - उनके काव्य में भाव, कल्पना, भाषा और कला का अद्भुत सामंजस्य मिलता है।

भारतीय संस्कृति में योगदान

1.भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विश्व में प्रचार।

2.आदर्श पारिवारिक जीवन एवं दाम्पत्य-प्रेम का चित्रण।

3.धर्म, नीति एवं नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा।

4.प्रकृति-प्रेम एवं पर्यावरण चेतना का विकास।

5.संस्कृत साहित्य को विश्वव्यापी सम्मान दिलाना।

6.भारतीय काव्यशास्त्र एवं नाट्यकला को समृद्ध बनाना।

उपसंहार

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के शिरोमणि कवि एवं नाटककार हैं। उनकी रचनाओं में भाषा की मधुरता, भावों की गम्भीरता, प्रकृति का सौन्दर्य, उपमाओं की अद्वितीयता तथा भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल स्वरूप विद्यमान है। उन्होंने संस्कृत साहित्य को विश्व-साहित्य में सर्वोच्च प्रतिष्ठा दिलाई। इस प्रकार कालिदास का व्यक्तित्व, कृतित्व, साहित्यिक योगदान एवं वैशिष्ट्य उन्हें भारतीय ही नहीं, बल्कि विश्व-साहित्य का अमर महाकवि सिद्ध करता है।

प्रश्नः -15. महाकवि भारवि का जीवनवृत्त तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/ योगदान का परिचय दीजिए

अथवा

महाकवि माघ का जीवन-परिचय तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान को स्पष्ट कीजिए

अथवा

महाकवि भारवि का जीवन-परिचय तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान पर प्रकाश डालिए

अथवा

महाकवि भारवि का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा कीजिए

अथवा

महाकवि भारवि का जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए

उत्तरः- महाकवि भारवि का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा साहित्यिक योगदान व वैशिष्ट्य

भूमिका

*महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के महान महाकाव्यकारों में अग्रगण्य हैं। वे बृहत्त्रयी (भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष) के प्रथम कवि माने जाते हैं। उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'किरातार्जुनीयम्' संस्कृत के पंचमहाकाव्यों में प्रतिष्ठित है। अपनी अर्थगाम्भीर्ययुक्त शैली, ओजस्वी भाषा तथा नीति-प्रधान विचारों के कारण भारवि का संस्कृत साहित्य में अत्यन्त उच्च स्थान है। उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध उक्ति है—**भारवेरर्थगौरवम्**, अर्थात् भारवि के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता अर्थ की गम्भीरता है।*

1. महाकवि भारवि का जीवनवृत्त

महाकवि भारवि के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य बहुत कम उपलब्ध हैं। अधिकांश विद्वानों के अनुसार उनका समय छठी शताब्दी ईस्वी माना जाता है। वे दक्षिण भारत के निवासी थे और विद्वानों के मतानुसार वे चालुक्य नरेश विष्णुवर्धन अथवा पल्लव नरेश सिंहविष्णु के आश्रित रहे। वे वेद, व्याकरण, मीमांसा, न्याय, राजनीति तथा काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनकी विद्वत्ता का परिचय उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति किरातार्जुनीयम् से प्राप्त होता है।

2. महाकवि भारवि का व्यक्तित्व

महाकवि भारवि का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली एवं विद्वत्तापूर्ण था-

(1) महान पण्डित: - वे वेद, दर्शन, व्याकरण, राजनीति एवं काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे।

(2) नीति-विशारद: - उनके काव्य में नीति, धर्म, कर्तव्य तथा राजधर्म का उत्कृष्ट प्रतिपादन मिलता है।

(3) ओजस्वी कवि: - उनकी भाषा में वीरता, उत्साह तथा तेजस्विता का अद्भुत समन्वय है।

(4) गंभीर चिन्तक: - वे केवल कवि ही नहीं, बल्कि गम्भीर दार्शनिक एवं विचारक भी थे।

(5) आदर्श साहित्यकार: - उनकी रचनाओं का उद्देश्य केवल काव्य-सौन्दर्य नहीं, बल्कि लोकशिक्षा एवं नीति का प्रचार भी है।

3. महाकवि भारवि का कृतित्व

महाकवि भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति— **किरातार्जुनीयम्**

विशेषताएँ

1. संस्कृत का श्रेष्ठ महाकाव्य।

2. पंचमहाकाव्यों में प्रमुख स्थान।

3. 18 सर्ग।

4.महाभारत के वनपर्व पर आधारित।

5.अर्जुन की तपस्या तथा भगवान शिव द्वारा किरात (शिकारी) रूप में परीक्षा का वर्णन।

6.वीररस की प्रधानता।

7.नीति, धर्म, राजनीति एवं आदर्श जीवन का उत्कृष्ट निरूपण।

4. महाकवि भारवि का साहित्यिक योगदान

(1) महाकाव्य-परम्परा का विकास: - किरातार्जुनीयम् संस्कृत महाकाव्य परम्परा की अमूल्य निधि है।

(2) अर्थगौरव की स्थापना: - उन्होंने गूढ़ एवं गम्भीर अर्थों से युक्त काव्य-शैली को प्रतिष्ठित किया।

(3) नीति एवं राजधर्म का प्रतिपादन: - उनके काव्य में शासन, राजनीति, कूटनीति तथा आदर्श नेतृत्व का उत्कृष्ट वर्णन है।

(4) वीररस का उत्कर्ष: - वीररस का जितना प्रभावशाली चित्रण भारवि ने किया है, वह संस्कृत साहित्य में अनुपम है।

*(5) **संस्कृत भाषा का उत्कर्ष**: - उन्होंने संस्कृत भाषा की अभिव्यक्ति-शक्ति एवं सौन्दर्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं।*

5. महाकवि भारवि की साहित्यिक विशेषताएँ (वैशिष्ट्य)

*(1) **अर्थगौरव**: - उनकी प्रमुख विशेषता अर्थ की गम्भीरता है- **भारवेरर्थगौरवम्।***

*(2) **ओजगुण की प्रधानता**: - उनकी भाषा ओजस्वी, प्रभावपूर्ण एवं वीरभाव से परिपूर्ण है।*

*(3) **नीति-प्रधानता**: - उनके काव्य में अनेक नीति-सूक्तियाँ एवं जीवनोपयोगी शिक्षाएँ मिलती हैं।*

*(4) **चरित्र-चित्रण**: - युधिष्ठिर, अर्जुन, द्रौपदी, भीम तथा भगवान शिव के चरित्रों का प्रभावशाली एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है।*

*(5) **अलंकारों का सुन्दर प्रयोग**: - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है।*

*(6) **प्रकृति-चित्रण**: - वन, पर्वत, ऋतुओं एवं प्राकृतिक दृश्यों का सजीव एवं आकर्षक चित्रण मिलता है।*

*(7) **भाषा एवं शैली**: -*

1.संस्कृत की परिष्कृत एवं परिमार्जित भाषा।

2.वैदर्भी एवं गौड़ी दोनों रीतियों का समन्वय।

3.गाम्भीर्ययुक्त एवं प्रभावशाली शैली।

4.लघु शब्दों में गहन अर्थ व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता।

भारतीय संस्कृति में योगदान

1.धर्म, नीति एवं आदर्श जीवन-मूल्यों का प्रचार।

2.वीरता, पराक्रम एवं पुरुषार्थ की भावना को प्रेरणा।

3.भारतीय संस्कृति एवं धर्म की प्रतिष्ठा।

4.संस्कृत महाकाव्य-परम्परा को समृद्ध करना।

5.आदर्श राजा, आदर्श योद्धा एवं आदर्श मानव का चित्रण।

उपसंहार

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के महान महाकाव्यकार, प्रकाण्ड पण्डित एवं अर्थगौरव के अद्वितीय कवि हैं। उनकी एकमात्र कृति किरातार्जुनीयम् संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। गम्भीर अर्थ, ओजस्वी भाषा, नीति-प्रधान विचार, उत्कृष्ट चरित्र-चित्रण तथा अलंकार-सौन्दर्य उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उन्होंने संस्कृत महाकाव्य-परम्परा को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। इस प्रकार महाकवि भारवि का व्यक्तित्व, कृतित्व, साहित्यिक योगदान एवं वैशिष्ट्य उन्हें संस्कृत साहित्य के अमर महाकवियों में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है।

प्रश्न: -**16. **महाकवि माघ का जीवनवृत्त एवं कृतित्व का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

महाकवि माघ का जीवन-परिचय एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए

अथवा

महाकवि माघ का जीवन-परिचय एवं कृतित्व की समीक्षा कीजिए

अथवा

महाकवि माघ का जीवन-परिचय तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान पर प्रकाश डालिए

अथवा

महाकवि माघ का जीवन-परिचय तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान को स्पष्ट कीजिए

उत्तरः- महाकवि माघ का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा साहित्यिक योगदान व वैशिष्ट्य

भूमिका

महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के महान महाकाव्यकारों में प्रमुख स्थान रखते हैं। वे बृहत्त्रयी (भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष) के द्वितीय महाकवि माने जाते हैं। उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'शिशुपालवधम्' संस्कृत के पञ्चमहाकाव्यों में सम्मिलित है। माघ ने अपने काव्य में अर्थगौरव, उपमा, पदलालित्य तथा अलंकारों का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध उक्ति है—

उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

1. महाकवि माघ का जीवनवृत्त

महाकवि माघ का समय सामान्यतः सातवीं–आठवीं शताब्दी ईस्वी माना जाता है। वे गुर्जरदेश (वर्तमान गुजरात) के श्रीमाल (भीनमाल) नगर के निवासी थे। उनके पितामह सुप्रभदेव राजा वर्मलात के मन्त्री थे तथा उनके पिता का नाम दत्तक (दत्त) था। माघ अत्यन्त विद्वान, दानी तथा धर्मनिष्ठ थे। वे वेद, व्याकरण, मीमांसा, न्याय, काव्यशास्त्र एवं दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित थे।

2. महाकवि माघ का व्यक्तित्व

महाकवि माघ का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली एवं विद्वत्तापूर्ण था-

***(1) महान विद्वान**:- वे वेद, व्याकरण, काव्यशास्त्र, दर्शन तथा पुराणों के प्रकाण्ड पण्डित थे।*

***(2) उच्चकोटि के कवि**: - उनकी काव्य-प्रतिभा अत्यन्त विलक्षण थी।*

***(3) दानी एवं उदार**: - भारतीय परम्परा में माघ को अत्यन्त दानी एवं उदार हृदय वाला माना गया है।*

***(4) धर्मनिष्ठ**: - उनकी रचनाओं में धर्म, नीति एवं आदर्श जीवन का सुन्दर चित्रण मिलता है।*

***(5) प्रकृति एवं सौन्दर्य के उपासक**: - उनके काव्य में प्रकृति, ऋतु, नगर, युद्ध एवं मानव-जीवन का अत्यन्त मनोहर वर्णन मिलता है।*

3. महाकवि माघ का कृतित्व

महाकवि माघ की एकमात्र उपलब्ध कृति— ***शिशुपालवधम्***

विशेषताएँ

1. संस्कृत का प्रसिद्ध महाकाव्य।

2. 20 सर्ग।

3. लगभग 1800 से अधिक श्लोक।

4. महाभारत के सभापर्व पर आधारित।

5. श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल-वध की कथा।

6. वीररस की प्रधानता।

7. अलंकार, उपमा, श्लेष एवं शब्दवैचित्र्य का अद्भुत प्रयोग।

4. महाकवि माघ का साहित्यिक योगदान

(1) महाकाव्य-परम्परा का विकास: - शिशुपालवधम् संस्कृत महाकाव्य-परम्परा की अमूल्य निधि है।

(2) अलंकार-शैली का उत्कर्ष: - माघ ने अलंकारों एवं काव्य-सौन्दर्य को उच्चतम स्तर पर पहुँचाया।

(3) भाषा का परिष्कार: - उन्होंने संस्कृत भाषा को अत्यन्त परिमार्जित एवं कलात्मक रूप प्रदान किया।

(4) रस एवं भावों का उत्कृष्ट चित्रण: - वीर, श्रृंगार, शान्त तथा करुण रस का सुन्दर समन्वय मिलता है।

(5) संस्कृत साहित्य को समृद्ध करना: - उन्होंने महाकाव्य परम्परा को नई ऊँचाई प्रदान की।

5. महाकवि माघ की साहित्यिक विशेषताएँ (वैशिष्ट्य)

(1) उपमा की उत्कृष्टता: - कालिदास की भाँति उपमाओं का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग।

(2) अर्थगौरव: - भारवि के समान गम्भीर एवं प्रभावशाली अर्थ।

(3) पदलालित्य: - दण्डी के समान कोमल, मधुर एवं ललित पदावली।

(4) अलंकार-वैभव: - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेष, यमक आदि अलंकारों का उत्कृष्ट प्रयोग।

(5) प्रकृति-चित्रण: - ऋतुओं, पर्वतों, नदियों, पुष्पों एवं प्राकृतिक दृश्यों का सजीव चित्रण।

(6) वर्णन-कौशल: - युद्ध, नगर, सभा, सेना, प्रकृति एवं उत्सवों का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन।

(7) भाषा एवं शैली:-

1.परिमार्जित संस्कृत।

2.ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुणों का समन्वय।

3.वैदर्भी एवं गौड़ी रीति का सुन्दर मिश्रण।

भारतीय संस्कृति में योगदान

1.धर्म एवं नीति का प्रचार।

2.श्रीकृष्ण के आदर्श चरित्र का चित्रण।

3.संस्कृत महाकाव्य परम्परा का विकास।

4.भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का संरक्षण।

5.साहित्य में सौन्दर्य एवं कलात्मकता की प्रतिष्ठा।

6.संस्कृत भाषा की अभिव्यक्ति-शक्ति का विकास।

उपसंहार

महाकवि माघ संस्कृत साहित्य के महान महाकाव्यकार एवं अलंकार-वैभव के अद्वितीय कवि हैं। उनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'शिशुपालवधम्' संस्कृत महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान रखती है। उपमा, अर्थगौरव, पदलालित्य, अलंकार-समृद्धि तथा वर्णन-कौशल उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उन्होंने संस्कृत महाकाव्य-परम्परा को समृद्ध एवं गौरवान्वित किया। इस प्रकार महाकवि माघ का व्यक्तित्व, कृतित्व, साहित्यिक योगदान एवं वैशिष्ट्य उन्हें संस्कृत साहित्य के अमर महाकवियों में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

प्रश्नः -*17.* **महाकवि श्रीहर्ष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए**

अथवा

महाकवि श्रीहर्ष के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा कीजिए

अथवा

महाकवि श्रीहर्ष के साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान पर प्रकाश डालिए

अथवा

महाकवि श्रीहर्ष के साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान को स्पष्ट कीजिए

अथवा

महाकवि श्रीहर्ष का जीवन-परिचय तथा उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/ योगदान का परिचय दीजिए

उत्तरः- महाकवि श्रीहर्ष का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा साहित्यिक योगदान व वैशिष्ट्य

भूमिका

महाकवि श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के महान महाकाव्यकारों में अग्रगण्य हैं। वे बृहत्त्रयी (भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष) के तृतीय महाकवि माने जाते हैं। उनकी प्रसिद्ध कृति 'नैषधीयचरितम्' संस्कृत के पञ्चमहाकाव्यों में सम्मिलित है। वे अपनी विद्वत्ता, दार्शनिक चिन्तन, अलंकार-वैभव तथा गूढ़ काव्य-शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाओं में काव्य-सौन्दर्य, पाण्डित्य एवं कल्पना का अद्भुत समन्वय मिलता है।

1. महाकवि श्रीहर्ष का जीवनवृत्त

महाकवि श्रीहर्ष का समय सामान्यतः बारहवीं शताब्दी ईस्वी माना जाता है। वे कान्यकुब्ज (कन्नौज) के गाहड़वाल वंशीय नरेश जयचन्द्र के राजकवि थे। उनके पिता का नाम श्रीहरि तथा माता का नाम मामल्ला देवी (या मामा देवी) माना जाता है। वे वेद, वेदान्त, न्याय, मीमांसा, व्याकरण, काव्यशास्त्र तथा दर्शन के महान विद्वान थे।

2. महाकवि श्रीहर्ष का व्यक्तित्व

महाकवि श्रीहर्ष का व्यक्तित्व अत्यन्त बहुमुखी एवं प्रभावशाली था-

***(1) महान विद्वान**:- वे वेद, दर्शन, न्याय, व्याकरण एवं काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे।*

***(2) दार्शनिक**:- उन्होंने अद्वैत वेदान्त का गम्भीर प्रतिपादन किया।*

***(3) उच्चकोटि के कवि**:- उनकी काव्य-प्रतिभा अत्यन्त विलक्षण थी।*

(4) ***पाण्डित्यपूर्ण साहित्यकार****:- उनकी रचनाओं में गहन विद्वत्ता एवं शास्त्रीय ज्ञान का समन्वय मिलता है।*

(5) ***धर्म एवं संस्कृति के उपासक****:-उनके काव्य में भारतीय संस्कृति,धर्म एवं आदर्श जीवन का उत्कृष्ट चित्रण मिलता है।*

3. महाकवि श्रीहर्ष का कृतित्व

(क) नैषधीयचरितम्*:- यह उनकी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है।*

विशेषताएँ

1. *संस्कृत का प्रसिद्ध महाकाव्य।*

2. *22 सर्ग।*

3. *लगभग 2830 श्लोक।*

4. *महाभारत में वर्णित नल-दमयन्ती की कथा पर आधारित।*

5. *श्रृंगार रस की प्रधानता।*

6. *अलंकार, पाण्डित्य एवं दार्शनिक चिन्तन का उत्कृष्ट समन्वय।*

(ख) खण्डनखण्डखाद्यम्*:- यह अद्वैत वेदान्त पर आधारित प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें न्याय दर्शन के सिद्धान्तों का तर्कपूर्ण खण्डन किया गया है।*

4. महाकवि श्रीहर्ष का साहित्यिक योगदान

(1) ***महाकाव्य-परम्परा का विकास****:- नैषधीयचरितम् संस्कृत महाकाव्य परम्परा की अमूल्य निधि है।*

(2) ***दार्शनिक काव्य का विकास****:- उन्होंने काव्य एवं दर्शन का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया।*

(3) ***संस्कृत भाषा का उत्कर्ष****:- उन्होंने संस्कृत भाषा को अत्यन्त परिष्कृत एवं विद्वत्तापूर्ण स्वरूप प्रदान किया।*

(4) ***अलंकार-समृद्धि****:- उनके काव्य में अलंकारों का अत्यन्त सुन्दर एवं कलात्मक प्रयोग मिलता है।*

(5) ***पाण्डित्यपूर्ण शैली****:- उनकी रचनाएँ संस्कृत विद्वानों के लिए अध्ययन एवं अनुसंधान का महत्त्वपूर्ण आधार हैं।*

5. महाकवि श्रीहर्ष की साहित्यिक विशेषताएँ (वैशिष्ट्य)

(1) ***पाण्डित्य-प्रधान शैली****:- उनके काव्य में वेद, उपनिषद्, पुराण, व्याकरण एवं दर्शन का व्यापक ज्ञान दिखाई देता है।*

(2) ***अलंकार-वैभव****:- उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक एवं अनुप्रास आदि अलंकारों का उत्कृष्ट प्रयोग।*

(3) ***श्रृंगार रस की प्रधानता****:- नल-दमयन्ती के प्रेम का अत्यन्त मार्मिक एवं कलात्मक चित्रण।*

(4) ***प्रकृति-चित्रण****:- वन, पर्वत, ऋतु एवं प्राकृतिक दृश्यों का अत्यन्त मनोहारी वर्णन।*

*(5) भाषा एवं शैली****:-***

i.*संस्कृत की परिष्कृत एवं गम्भीर भाषा।*

ii.*वैदर्भी रीति का प्रभाव।*

iii.*अर्थगौरव एवं भावगाम्भीर्य।*

iv.शास्त्रीयता एवं काव्य-सौन्दर्य का समन्वय।

***(6) दार्शनिकता**:- उनके काव्य में अद्वैत वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।*

भारतीय संस्कृति में योगदान

1. भारतीय संस्कृति एवं धर्म का संरक्षण।

2. नल-दमयन्ती के माध्यम से आदर्श प्रेम एवं दाम्पत्य जीवन का चित्रण।

3. संस्कृत महाकाव्य परम्परा को समृद्ध करना।

4. दर्शन एवं काव्य का समन्वय स्थापित करना।

5. भारतीय साहित्य को उच्च बौद्धिक एवं कलात्मक स्तर प्रदान करना।

उपसंहार

महाकवि श्रीहर्ष संस्कृत साहित्य के महान महाकाव्यकार, दार्शनिक एवं प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनकी कृति 'नैषधीयचरितम्' संस्कृत महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान रखती है। पाण्डित्य, अलंकार-वैभव, दार्शनिक चिन्तन, श्रृंगार-चित्रण तथा गम्भीर भाषा उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उन्होंने संस्कृत साहित्य को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं और भारतीय ज्ञान-परम्परा को समृद्ध बनाया। इस प्रकार महाकवि श्रीहर्ष का व्यक्तित्व, कृतित्व, साहित्यिक योगदान एवं वैशिष्ट्य उन्हें संस्कृत साहित्य के अमर महाकवियों में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

प्रश्नः-**18. **महाकवि भर्तृहरि का जीवनवृत्त एवं उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान का वर्णन कीजिए

अथवा

महाकवि भर्तृहरि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समीक्षा कीजिए

अथवा

महाकवि भर्तृहरि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन कीजिए

अथवा

महाकवि भर्तृहरि का जीवन-परिचय एवं उनके साहित्यिक वैशिष्ट्य/योगदान पर प्रकाश डालिए

उत्तरः- महाकवि भर्तृहरि का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा साहित्यिक योगदान व वैशिष्ट्य

भूमिका

महाकवि भर्तृहरि संस्कृत साहित्य के महान कवि, दार्शनिक एवं वैराग्य-चिन्तक हैं। वे अपने नीति, श्रृंगार तथा वैराग्य विषयक काव्यों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उनकी रचनाओं में मानव जीवन के विविध पक्षों का अत्यन्त मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण मिलता है। उनकी प्रमुख कृति 'शतकत्रय' संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती है।

1. महाकवि भर्तृहरि का जीवनवृत्त

महाकवि भर्तृहरि का समय सामान्यतः छठी–सातवीं शताब्दी ईस्वी माना जाता है। उनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक मत के अनुसार वे उज्जयिनी के राजा तथा विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे। सांसारिक

जीवन से विरक्त होकर उन्होंने राजपाट का त्याग कर संन्यास ग्रहण किया और आध्यात्मिक जीवन अपनाया। यद्यपि उनके जीवन के ऐतिहासिक तथ्य पूर्णतः निश्चित नहीं हैं, तथापि उनकी रचनाएँ उनकी महान विद्वत्ता, गहन अनुभूति तथा दार्शनिक दृष्टि का परिचय देती हैं।

2. महाकवि भर्तृहरि का व्यक्तित्व

महाकवि भर्तृहरि का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली एवं बहुआयामी था-

(1) महान कवि:- वे संस्कृत के श्रेष्ठ मुक्तक-कवि माने जाते हैं।

(2) दार्शनिक चिन्तक:- उनकी रचनाओं में जीवन, संसार, धर्म एवं मोक्ष का गम्भीर विवेचन मिलता है।

(3) नीति-विशारद:- उन्होंने मानव जीवन के लिए अनेक नीति-सूक्तियों का उपदेश दिया।

(4) वैराग्य के उपासक:-उनके काव्य में संसार की नश्वरता तथा वैराग्य का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण है।

(5) लोकशिक्षक:- उनकी रचनाएँ केवल काव्य नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन एवं नैतिक शिक्षा का अमूल्य स्रोत हैं।

3. महाकवि भर्तृहरि का कृतित्व

1.महाकवि भर्तृहरि की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति 'शतकत्रय' है-

(क) नीतिशतकम्:-इसमें नीति,सदाचार,विद्या, सत्संग, मित्रता, सज्जनता एवं आदर्श जीवन का वर्णन है।

(ख) श्रृङ्गारशतकम्:-इसमें प्रेम, सौन्दर्य, यौवन तथा दाम्पत्य जीवन का काव्यमय चित्रण किया गया है।

(ग) वैराग्यशतकम्:- इसमें संसार की नश्वरता, वैराग्य, आत्मचिन्तन एवं मोक्ष का निरूपण है।

शतकत्रय में लगभग 300 श्लोक हैं तथा यह संस्कृत मुक्तक-साहित्य का सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है।

2.वाक्यपदीयम्- यह व्याकरण ग्रन्थ है।

4. महाकवि भर्तृहरि का साहित्यिक योगदान

(1) मुक्तक काव्य का उत्कर्ष:- भर्तृहरि ने मुक्तक-काव्य को अत्यन्त ऊँचा स्थान प्रदान किया।

(2) नीति-साहित्य का विकास:- उनके नीतिशतक ने भारतीय नीति-साहित्य को समृद्ध बनाया।

(3) वैराग्य-दर्शन का प्रसार:- उन्होंने सांसारिक मोह से निवृत्ति एवं आध्यात्मिक जीवन का संदेश दिया।

(4) संस्कृत भाषा का सौन्दर्य:- सरल,मधुर एवं प्रभावशाली भाषा में गहन विचारों की अभिव्यक्ति उनकी विशेषता है।

(5) भारतीय जीवन-दर्शन का प्रतिपादन:- उनकी रचनाओं में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का संतुलित विवेचन मिलता है।

5. महाकवि भर्तृहरि की साहित्यिक विशेषताएँ (वैशिष्ट्य)

(1) नीति-प्रधानता:- उनके काव्य में जीवनोपयोगी नीति एवं नैतिक शिक्षाओं का भण्डार है।

(2) सरल एवं प्रभावशाली भाषा:- उनकी भाषा सहज, सरस एवं सुबोध है।

(3) प्रसादगुण की प्रधानता:- अल्प शब्दों में गूढ़ एवं गम्भीर भावों की अभिव्यक्ति उनकी विशेषता है।

(4) सूक्तिपरक शैली:- उनके अनेक श्लोक आज भी लोकोक्तियों एवं सूक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

(5) रस-वैविध्य:- नीति, श्रृंगार एवं वैराग्य—तीनों भावों का उत्कृष्ट समन्वय मिलता है।

(6) अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग:- *उपमा, रूपक, अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारों का सहज एवं प्रभावशाली प्रयोग मिलता है।*

(7) दार्शनिक गाम्भीर्य:- *उनके काव्य में जीवन की नश्वरता, आत्मज्ञान तथा मोक्ष का गम्भीर चिन्तन मिलता है।*

भारतीय संस्कृति में योगदान

1.*नीति, सदाचार एवं नैतिक मूल्यों का प्रचार।*

2.*वैराग्य एवं आध्यात्मिक जीवन की प्रेरणा।*

3.*संस्कृत मुक्तक-साहित्य को समृद्ध बनाना।*

4.*भारतीय दर्शन एवं जीवन-मूल्यों का प्रसार।*

5.*सत्संग, विद्या, विनय एवं चरित्र की महत्ता का प्रतिपादन।*

6.*मानव जीवन को आदर्श एवं नैतिक दिशा प्रदान करना।*

उपसंहार

महाकवि भर्तृहरि संस्कृत साहित्य के महान मुक्तक-कवि, दार्शनिक एवं नीति-विशारद हैं। उनकी शतकत्रयी भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है। सरल भाषा, गूढ़ विचार, नीति-प्रधानता, वैराग्य-भाव तथा सूक्तिपरक शैली उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से मानव जीवन को नैतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक दिशा प्रदान की। इस प्रकार महाकवि भर्तृहरि का व्यक्तित्व, कृतित्व, साहित्यिक योगदान एवं वैशिष्ट्य उन्हें संस्कृत साहित्य के अमर कवियों में विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

प्रश्नः -19. निम्नलिखित उक्तियों पर टिप्पणी लिखिए—

(क) उपमा कालिदासस्य

(ख) भारवेरर्थगौरवम्

(ग) माघे सन्ति त्रयो गुणाः

(घ) मुनित्रय

उत्तरः- टिप्पणी

(क) उपमा कालिदासस्य

अर्थ— उपमा (तुलना) के प्रयोग में महाकवि कालिदास अद्वितीय हैं।

टिप्पणी— महाकवि कालिदास की सबसे बड़ी विशेषता उनकी उपमा-अलंकार के प्रयोग में अद्भुत दक्षता है। उन्होंने प्रकृति, मानव-जीवन एवं भावों के चित्रण में अत्यन्त सजीव, स्वाभाविक एवं मनोहर उपमाओं का प्रयोग किया है। उनकी उपमाएँ केवल अलंकार नहीं, बल्कि भावों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। इसी कारण संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध उक्ति है— "उपमा कालिदासस्य"।

(ख) भारवेरर्थगौरवम्

अर्थ— महाकवि भारवि के काव्य की विशेषता अर्थ की गम्भीरता है।

टिप्पणी— महाकवि भारवि के किरातार्जुनीयम् में प्रत्येक श्लोक गहन विचार, नीति, दर्शन तथा जीवन-सन्देश से परिपूर्ण है। उनकी भाषा में ओज तथा अर्थ में गाम्भीर्य है। वे कम शब्दों में अत्यन्त गूढ़ भाव व्यक्त करते हैं। इसी कारण उनके विषय में कहा गया है— "भारवेरर्थगौरवम्"।

(ग) माघे सन्ति त्रयो गुणाः

अर्थ— महाकवि माघ के काव्य में तीनों श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं।

टिप्पणी— महाकवि माघ के शिशुपालवधम् में कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव तथा दण्डी का पदलालित्य— ये तीनों गुण एक साथ मिलते हैं। इसी कारण प्रसिद्ध उक्ति है—

उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

अर्थात् माघ के काव्य में इन तीनों महान कवियों की श्रेष्ठ विशेषताओं का समन्वय है।

(घ) मुनित्रय

पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि—इन तीन महान वैयाकरणों को संयुक्त रूप से मुनित्रय कहा जाता है।

टिप्पणी— संस्कृत व्याकरण-परम्परा के विकास में इन तीनों आचार्यों का अनुपम योगदान है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी की रचना कर व्याकरण का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया, कात्यायन ने वार्तिकों द्वारा उसके सूत्रों का परिष्कार एवं स्पष्टीकरण किया तथा पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना कर व्याकरण को दार्शनिक एवं व्यावहारिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार इन तीनों ने मिलकर संस्कृत व्याकरण को पूर्णता प्रदान की, इसलिए इन्हें "मुनित्रय" कहा जाता है।

प्रश्नः -20. संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की वर्तमान समय में प्रासंगिकता का विवेचन कीजिए तथा राष्ट्रनिर्माण में इसकी भूमिका स्पष्ट कीजिए।

उत्तरः- संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान की वर्तमान में प्रासंगिकता एवं राष्ट्रनिर्माण में भूमिका

भूमिका

संस्कृत-वाङ्मय भारतीय संस्कृति, दर्शन, विज्ञान एवं ज्ञान-परम्परा का अमूल्य भण्डार है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, आयुर्वेद, योग, ज्योतिष, गणित, वास्तुशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थों में मानव जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान का समृद्ध स्वरूप उपलब्ध है। आज के वैज्ञानिक एवं वैश्विक युग में भी संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान अत्यन्त प्रासंगिक है तथा राष्ट्रनिर्माण में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

1. संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान

संस्कृत साहित्य में अनेक विषयों का वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित विवेचन मिलता है, जैसे—

क.वेद एवं उपनिषद् *– आध्यात्मिक एवं दार्शनिक ज्ञान।*

ख.आयुर्वेद *– स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान।*

ग.योगशास्त्र *– शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य।*

घ.ज्योतिषशास्त्र – खगोल एवं काल-गणना।

ङ.गणित – शून्य, दशमलव, बीजगणित आदि का विकास।

च.वास्तुशास्त्र – भवन एवं नगर-निर्माण।

छ.अर्थशास्त्र – शासन, अर्थव्यवस्था एवं प्रशासन।

ज.नाट्यशास्त्र – कला, संगीत एवं रंगमंच का विज्ञान।

झ.धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र – नैतिक एवं सामाजिक जीवन के सिद्धान्त।

2. वर्तमान में प्रासंगिकता

(1) नैतिक शिक्षा:- संस्कृत-वाङ्मय सत्य, अहिंसा, करुणा, सेवा, सहिष्णुता एवं कर्तव्यपालन जैसे जीवन-मूल्यों की शिक्षा देता है, जो आज के समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

(2) स्वास्थ्य एवं योग:- आयुर्वेद एवं योग आज सम्पूर्ण विश्व में स्वास्थ्य, रोग-निवारण तथा मानसिक शान्ति के प्रभावी साधन के रूप में स्वीकार किए जा रहे हैं।

(3) पर्यावरण संरक्षण:- वेदों एवं पुराणों में प्रकृति, जल, वायु, वन एवं जीव-जंतुओं के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। यह विचार सतत विकास **(Sustainable Development)** के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

(4) वैज्ञानिक दृष्टिकोण:- संस्कृत ग्रन्थों में गणित, खगोल, चिकित्सा, धातु-विज्ञान एवं कृषि से सम्बन्धित अनेक वैज्ञानिक सिद्धान्त उपलब्ध हैं, जो आज भी अनुसंधान के विषय हैं।

(5) सांस्कृतिक संरक्षण:- संस्कृत-वाङ्मय भारतीय संस्कृति, परम्परा, इतिहास एवं राष्ट्रीय अस्मिता का आधार है। इसका अध्ययन सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में सहायक है।

3. राष्ट्रनिर्माण में भूमिका

(1) राष्ट्रीय एकता का सुदृढ़ीकरण:- संस्कृत साहित्य सम्पूर्ण भारत को एक सांस्कृतिक सूत्र में जोड़ता है तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को सुदृढ़ करता है।

(2) चरित्र निर्माण:- संस्कृत ग्रन्थ सत्य, अनुशासन, त्याग, परिश्रम एवं सेवा की प्रेरणा देकर आदर्श नागरिकों का निर्माण करते हैं।

(3) शिक्षा का विकास:- राष्ट्रीय शिक्षा नीति **(NEP 2020)** में संस्कृत एवं भारतीय ज्ञान-परम्परा को महत्त्व देकर समग्र एवं मूल्यपरक शिक्षा पर बल दिया गया है।

(4) सांस्कृतिक आत्मगौरव:- संस्कृत-वाङ्मय भारतीयों में अपनी संस्कृति,इतिहास एवं परम्पराओं के प्रति गर्व की भावना उत्पन्न करता है।

(5) वैश्विक नेतृत्व:- "वसुधैव कुटुम्बकम्", "सर्वे भवन्तु सुखिनः" तथा "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु" जैसे आदर्श विश्व-शान्ति एवं मानव-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

(6) सुशासन एवं लोककल्याण:- अर्थशास्त्र, महाभारत तथा रामायण में वर्णित शासन-व्यवस्था, न्याय, कर्तव्य एवं लोककल्याण के सिद्धान्त आधुनिक प्रशासन के लिए भी प्रेरणादायक हैं।

4. प्रमुख संस्कृत सूक्तियाँ

1.सा विद्या या विमुक्तये- विद्या वही है, जो मुक्ति प्रदान करे।

2.सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः- सभी सुखी हों, सभी निरोग हों।

3. वसुधैव कुटुम्बकम्- सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है।

उपसंहार

संस्कृत-वाङ्मय में निहित पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान एवं भविष्य के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है। यह नैतिकता, विज्ञान, स्वास्थ्य, पर्यावरण, शिक्षा, संस्कृति तथा सुशासन का सशक्त आधार प्रस्तुत करता है। राष्ट्रनिर्माण के लिए आवश्यक चरित्र, सांस्कृतिक चेतना, वैज्ञानिक दृष्टि एवं राष्ट्रीय एकता के निर्माण में संस्कृत-वाङ्मय की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतः भारतीय ज्ञान-परम्परा का संरक्षण, संवर्धन एवं व्यवहारिक उपयोग वर्तमान समय की आवश्यकता है।

II.व्याख्यात्मक प्रश्न

(किरातार्जुनीयम् महाकाव्य-प्रथम सर्ग,कुमारसंभवम् महाकाव्य-प्रथम सर्ग एवं नीतिशतकम्)

क. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य-प्रथम सर्गः श्लोक-1 से 25

(महत्त्वपूर्ण पद्यों की व्याख्या)

श्लोक-1

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालिनीं प्रजासु वृत्तिं यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णलिङ्गी विदितः समाययौ युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।।

(किरातार्जुनीयम्-1/1)

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। महाभारत के वनपर्व को आधार बनाकर रचित इस महाकाव्य के प्रारम्भ में कवि पाण्डवों के वनवास की स्थिति का चित्रण करते हैं। वनवास के समय धर्मराज युधिष्ठिर द्वैतवन में अपने भाइयों एवं द्रौपदी के साथ निवास कर रहे हैं। उधर हस्तिनापुर में दुर्योधन राज्य कर रहा है। युधिष्ठिर राज्य की वास्तविक स्थिति जानने के इच्छुक हैं। अतः हस्तिनापुर से समाचार प्राप्त करने के लिए एक वनचारी (गुप्तचर) को भेजा गया था। वही गुप्तचर दुर्योधन के शासन, प्रजाओं की स्थिति तथा राज्य-व्यवस्था का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके पुनः द्वैतवन में युधिष्ठिर के समक्ष उपस्थित होता है। प्रस्तुत श्लोक उसी प्रसंग का वर्णन करता है।*

अर्थ:- *कुरुराज (दुर्योधन) के राज्य की समृद्धि तथा प्रजा की स्थिति का पता लगाने के लिए नियुक्त किया गया वह वेश बदलने में निपुण वनचारी गुप्तचर अपना कार्य पूर्ण करके द्वैतवन में धर्मराज युधिष्ठिर के पास आ पहुँचा।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने किरातार्जुनीयम् की कथा का अत्यन्त प्रभावशाली प्रारम्भ किया है। पाण्डव वनवास के समय द्वैतवन में निवास कर रहे हैं। यद्यपि वे राज्य से दूर हैं, तथापि युधिष्ठिर एक आदर्श राजा होने के कारण

हस्तिनापुर की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति के प्रति निरन्तर सजग रहते हैं। इसी उद्देश्य से उन्होंने एक वर्णलिङ्गी अर्थात् वेश बदलने में निपुण गुप्तचर को हस्तिनापुर भेजा था। उसने दुर्योधन के शासन, राज्य की समृद्धि, प्रजाओं की दशा तथा प्रशासन की वास्तविक स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण किया।

अपना कार्य सम्पन्न करने के पश्चात् वह गुप्तचर पुनः द्वैतवन में उपस्थित होकर धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष पहुँचता है। इस प्रकार यह श्लोक सम्पूर्ण महाकाव्य की कथा का प्रारम्भिक सूत्र प्रस्तुत करता है। यहाँ भारवि केवल एक घटना का वर्णन नहीं करते, बल्कि यह भी संकेत देते हैं कि आदर्श शासक विपरीत परिस्थितियों में भी राज्य, प्रजा एवं राजनीति के प्रति सजग रहता है। युधिष्ठिर का यह दूरदर्शी एवं उत्तरदायी व्यक्तित्व उनकी राजधर्मनिष्ठा का परिचायक है।

साथ ही, इस श्लोक से तत्कालीन भारतीय शासन-व्यवस्था में गुप्तचर-तन्त्र के महत्त्व का भी परिचय मिलता है। राज्य की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए योग्य एवं विश्वसनीय गुप्तचरों की नियुक्ति प्राचीन भारतीय राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग था।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में कथावस्तु का स्वाभाविक एवं प्रभावशाली प्रारम्भ हुआ है।
2. वर्णलिङ्गी तथा वनेचरः जैसे पदों से तत्कालीन गुप्तचर-व्यवस्था का सजीव चित्र उपस्थित होता है।
3. भाषा अत्यन्त परिमार्जित, ओजस्वी एवं अर्थगौरवयुक्त है।
4. ओजगुण तथा प्रसादगुण की प्रधानता है।
5. समास-बहुल शैली के कारण श्लोक में गाम्भीर्य एवं संक्षिप्तता दोनों विद्यमान हैं।
6. श्लोक में भारवि की प्रसिद्ध अर्थगौरव-शैली का प्रारम्भ से ही परिचय मिलता है।
7. यह श्लोक सम्पूर्ण महाकाव्य की कथा का सफल भूमिका-निर्माण करता है।

श्लोक-2

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषाहितैषिणः।।

(किरातार्जुनीयम्-1/2)

सन्दर्भ-प्रसंगः- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोक में वर्णित है कि हस्तिनापुर की राजनीतिक स्थिति का निरीक्षण कर एक वर्णलिङ्गी गुप्तचर (वनचारी) द्वैतवन में धर्मराज युधिष्ठिर के समीप पहुँचता है। प्रणाम करने के उपरान्त वह दुर्योधन द्वारा शासित राज्य की वास्तविक स्थिति का निवेदन करने के लिए प्रस्तुत होता है। उसे ज्ञात था कि यह समाचार युधिष्ठिर के लिए अप्रिय हो सकता है, क्योंकि राज्य उनके शत्रु दुर्योधन के अधिकार में था। तथापि वह सत्यनिष्ठ एवं हितैषी होने के कारण बिना किसी संकोच के यथार्थ स्थिति का वर्णन करने का निश्चय करता है।प्रस्तुत श्लोक में उसी सत्यनिष्ठ गुप्तचर के कर्तव्यपरायण चरित्र का चित्रण किया गया है।

अर्थः- *प्रणाम करने के बाद जब वह गुप्तचर शत्रु (दुर्योधन) द्वारा अधिगृहीत राज्य का समाचार युधिष्ठिर को सुनाने लगा, तब उसका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ; क्योंकि सच्चे हितैषी कभी झूठी अथवा केवल प्रिय लगने वाली बात नहीं कहते।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता तथा वास्तविक हितैषिता का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। गुप्तचर युधिष्ठिर को प्रणाम करके उनके समक्ष उपस्थित होता है। अब उसे यह बताना है कि कुरुराज्य इस समय दुर्योधन के अधिकार में है तथा उसका शासन व्यवस्थित रूप से चल रहा है। यह समाचार स्वाभाविक रूप से युधिष्ठिर के लिए अप्रिय था, क्योंकि वे स्वयं उस राज्य के वास्तविक अधिकारी थे। किन्तु गुप्तचर सत्य को छिपाने या उसे मधुर बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं करता। उसका मन तनिक भी विचलित नहीं होता।वह निर्भीक होकर वास्तविक स्थिति का निवेदन करता है।

कवि इस अवसर पर एक सार्वकालिक नीति का प्रतिपादन करते हैं कि सच्चा हितैषी कभी असत्य अथवा केवल प्रिय लगने वाली बात नहीं कहता। वह व्यक्ति के हित के लिए आवश्यक होने पर अप्रिय सत्य भी कहने का साहस रखता है। झूठी प्रशंसा अथवा मन बहलाने वाली बातें हितैषिता नहीं, बल्कि अहित का कारण बनती हैं। यहाँ भारवि ने अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सत्य को व्यक्त किया है कि सत्य और हित का सम्बन्ध प्रियता से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति हमारे वास्तविक कल्याण की कामना करता है, वह आवश्यकता पड़ने पर कटु सत्य भी कहता है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में नीति एवं चरित्र-चित्रण का सुन्दर समन्वय हुआ है।

2. अन्तिम चरण में सुभाषितात्मक शैली का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग है।

3. अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग है, क्योंकि गुप्तचर के व्यवहार के माध्यम से सार्वभौमिक नीति का प्रतिपादन किया गया है।

4. भाषा गम्भीर, परिमार्जित एवं अर्थगौरवयुक्त है।

5. प्रसादगुण तथा ओजगुण की प्रधानता है।

6. श्लोक में कथा और नीति का अत्यन्त स्वाभाविक समन्वय भारवि की विशिष्ट शैली का परिचायक है।

श्लोक-3

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे।।

(किरातार्जुनीयम्-1/3)

सन्दर्भ-प्रसंगः- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में वर्णित है कि हस्तिनापुर की स्थिति का निरीक्षण कर वर्णलिङ्गी गुप्तचर द्वैतवन में धर्मराज युधिष्ठिर के पास पहुँचता है। प्रणाम करने के पश्चात् वह राज्य की वास्तविक स्थिति निवेदित करने के लिए प्रस्तुत होता है। चूँकि राज्य-सम्बन्धी समाचार अत्यन्त गोपनीय एवं शत्रुओं के विनाश की योजना से सम्बन्धित थे, इसलिए युधिष्ठिर उसे*

एकान्त में निवेदन करने की अनुमति देते हैं। राजा की गोपनीय आज्ञा प्राप्त करने के उपरान्त वह गुप्तचर अत्यन्त परिमार्जित, उदार, स्पष्ट तथा विचारपूर्वक निश्चित अर्थ वाली वाणी में अपना निवेदन आरम्भ करता है। प्रस्तुत श्लोक में उसी स्थिति का वर्णन है।

अर्थः- शत्रुओं के विनाश की योजना बनाने के इच्छुक राजा युधिष्ठिर की गोपनीय अनुमति प्राप्त करके उस गुप्तचर ने अत्यन्त परिमार्जित, गरिमामयी तथा स्पष्ट अर्थ वाली वाणी में अपना निवेदन आरम्भ किया।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने राजनीतिक गोपनीयता, राजधर्म तथा आदर्श दूत के वाक्-कौशल का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। गुप्तचर भली-भाँति जानता था कि उसके पास जो समाचार हैं, वे केवल सामान्य राज्य-समाचार नहीं, बल्कि भविष्य में शत्रुओं के पराभव एवं राज्य-पुनर्प्राप्ति की योजना के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए वह सार्वजनिक रूप से कुछ न कहकर पहले धर्मराज युधिष्ठिर से रहस्यनिवेदन की अनुमति प्राप्त करता है। युधिष्ठिर भी आदर्श राजा होने के कारण गोपनीय विषयों की मर्यादा को समझते हैं और उसे एकान्त में निवेदन करने की आज्ञा प्रदान करते हैं। यह प्रसंग प्राचीन भारतीय राजनीतिक शिष्टाचार एवं गुप्त मन्त्रणा की परम्परा का परिचायक है। आज्ञा प्राप्त करने के बाद गुप्तचर अपनी बात अत्यन्त सौष्ठवपूर्ण, उदार, मर्यादित तथा स्पष्ट भाषा में कहना आरम्भ करता है। उसकी वाणी में न अतिशयोक्ति है, न कटुता और न ही असत्य; अपितु प्रत्येक शब्द विचारपूर्वक, सन्तुलित तथा निश्चित उद्देश्य से कहा गया है।

यहाँ भारवि संकेत करते हैं कि महत्त्वपूर्ण विषयों पर बोलते समय केवल सत्य ही पर्याप्त नहीं, बल्कि भाषा का संयम, स्पष्टता, गरिमा तथा अवसरानुकूलता भी अनिवार्य है। एक आदर्श दूत वही है जो उचित समय, उचित स्थान तथा उचित भाषा का चयन करना जानता हो।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में राजनीतिक गाम्भीर्य एवं चरित्र-चित्रण का सुन्दर समन्वय हुआ है।
2. "सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम्" जैसे समस्तपदों से भारवि के अर्थगौरव एवं समास-वैभव का परिचय मिलता है।
3. भाषा अत्यन्त परिमार्जित, ओजस्वी एवं अर्थसमृद्ध है।
4. ओजगुण तथा प्रसादगुण की प्रधानता है।
5. श्लोक में कथा के साथ नीति एवं राजधर्म का स्वाभाविक समन्वय है।
6. समास-बहुल शैली के कारण श्लोक में गाम्भीर्य एवं साहित्यिक गरिमा का उत्कृष्ट निर्वाह हुआ है।

श्लोक-4

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो, न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा, हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।

(किरातार्जुनीयम्-1/4)

सन्दर्भ–प्रसंगः- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में वर्णित है कि हस्तिनापुर से लौटे हुए वर्णलिङ्गी गुप्तचर ने धर्मराज युधिष्ठिर से एकान्त में राज्य-सम्बन्धी

गोपनीय समाचार निवेदित करने की अनुमति प्राप्त की। अब वह अपना निवेदन आरम्भ करते हुए अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहता है कि राज्यकार्य में नियुक्त गुप्तचर अपने स्वामी से किसी प्रकार का छल नहीं कर सकते। इसलिए यदि उसके कथन में कोई बात अप्रिय अथवा कठोर प्रतीत हो, तो उसे क्षमा करना चाहिए, क्योंकि हितकारी और साथ ही मन को प्रिय लगने वाला वचन अत्यन्त दुर्लभ होता है। प्रस्तुत श्लोक में आदर्श गुप्तचर की सत्यनिष्ठा तथा राजधर्म का अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन हुआ है।

अर्थः- गुप्तचरों को अपने नेत्र मानने वाले राजा को अपने सेवकों द्वारा कभी धोखा नहीं दिया जाना चाहिए। इसलिए मेरा कथन चाहे आपको प्रिय लगे या अप्रिय, उसे क्षमा करके सुनिए; क्योंकि जो वचन एक साथ हितकारी भी हो और मन को प्रिय भी लगे, वह अत्यन्त दुर्लभ होता है।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने आदर्श गुप्तचर के कर्तव्य, सत्यनिष्ठा तथा हितोपदेश की महिमा का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। गुप्तचर धर्मराज युधिष्ठिर से अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहता है कि राजा अपने गुप्तचरों के माध्यम से ही राज्य की वास्तविक स्थिति को देखता और समझता है। इसी कारण शास्त्रों में गुप्तचर को राजा का 'नेत्र' कहा गया है। यदि गुप्तचर ही असत्य बोले अथवा स्वामी को भ्रमित करे, तो राजा उचित निर्णय नहीं ले सकेगा और सम्पूर्ण राज्य-व्यवस्था संकट में पड़ जाएगी। इसीलिए वह कहता है कि सेवकों का धर्म है कि वे अपने स्वामी से कभी छल न करें। वे परिस्थिति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करें, चाहे वह समाचार सुखद हो अथवा दुःखद।

इसके पश्चात् गुप्तचर अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन करता है कि यदि उसके शब्द अप्रिय या कठोर प्रतीत हों, तो भी उन्हें क्षमा किया जाए; क्योंकि उसका उद्देश्य केवल स्वामी का हित है, न कि उन्हें दुःखी करना। अन्तिम चरण में कवि एक अत्यन्त प्रसिद्ध नीति का प्रतिपादन करते हैं— **"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः",** अर्थात् जो वचन एक साथ हितकारी भी हो और सुनने में प्रिय भी लगे, वह अत्यन्त दुर्लभ होता है। अधिकांश समय हितकारी वचन कुछ कठोर प्रतीत होते हैं, जबकि प्रिय वचन सदैव हितकारी नहीं होते। अतः बुद्धिमान व्यक्ति को सत्य एवं हितकर वचनों को ग्रहण करना चाहिए, चाहे वे तत्काल अप्रिय क्यों न लगें।

इसी प्रकार मनुस्मृति में कहा गया है— **"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्",** अर्थात् सत्य और प्रिय वचन बोलने का प्रयास करना चाहिए, किन्तु असत्य प्रिय वचन नहीं बोलना चाहिए। प्रस्तुत श्लोक में हित की प्रधानता पर विशेष बल दिया गया है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में नीतिप्रधान शैली का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग हुआ है।
2. "चारचक्षुषः" रूपकात्मक प्रयोग है, जिसमें गुप्तचरों को राजा के नेत्र के रूप में चित्रित किया गया है।
3. अन्तिम चरण "हितं मनोहारि च दुर्लभं वच" संस्कृत साहित्य की अत्यन्त प्रसिद्ध सूक्ति है।
4. अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।
5. भाषा गम्भीर, परिमार्जित, ओजस्वी तथा अर्थगौरवयुक्त है।
6. ओजगुण एवं प्रसादगुण की प्रधानता है।

7. कथा, नीति एवं मनोविज्ञान का अत्यन्त स्वाभाविक समन्वय इस श्लोक की विशेषता है।

श्लोक-5

स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं,हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं, नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः॥

(किरातार्जुनीयम्-1/5)

सन्दर्भ- प्रसंग:-प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में हस्तिनापुर से लौटे हुए वर्णलिङ्गी गुप्तचर ने धर्मराज युधिष्ठिर से निवेदन किया कि सच्चा हितैषी कभी असत्य अथवा केवल प्रिय वचन नहीं कहता। उसी विचार को आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत श्लोक में वह मित्र, राजा तथा मन्त्री के आदर्श कर्तव्यों का प्रतिपादन करता है। वह कहता है कि जो मित्र अपने स्वामी अथवा मित्र को हितकर उपदेश नहीं देता, वह वास्तविक मित्र नहीं है; और जो राजा हितकारी परामर्श नहीं सुनता, वह भी आदर्श शासक नहीं कहलाता। वस्तुतः राज्य की समस्त सम्पदाएँ उसी राजा एवं मन्त्री के पास रहती हैं, जो परस्पर अनुकूल, विश्वासपूर्ण एवं हितचिन्तक हों।

अर्थ:- जो मित्र अपने स्वामी या मित्र को हितकारी उपदेश नहीं देता, वह कैसा मित्र है? और जो राजा हितकर सलाह नहीं सुनता, वह कैसा राजा है? वास्तव में समस्त सम्पत्तियाँ उसी राजा और मन्त्री के पास रहती हैं, जो परस्पर अनुकूल एवं हितचिन्तक होते हैं।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने आदर्श मित्र, आदर्श राजा तथा आदर्श मन्त्री के गुणों का अत्यन्त व्यावहारिक एवं नीति-प्रधान निरूपण किया है। गुप्तचर कहता है कि वास्तविक मित्र वही है जो आवश्यकता पड़ने पर अपने मित्र अथवा स्वामी को उचित परामर्श दे तथा उसके दोषों का भी संकेत करे। जो केवल प्रसन्न करने के लिए मधुर वचन बोलता रहे और कभी सत्य अथवा हितकर उपदेश न दे, वह सच्चा मित्र नहीं कहलाता। इसी प्रकार वास्तविक राजा वही है जो अपने हितैषियों, मन्त्रियों तथा विद्वानों के परामर्श को धैर्यपूर्वक सुनने की क्षमता रखता हो। जो राजा अहंकारवश उचित सलाह की उपेक्षा करता है, वह अपने राज्य और स्वयं दोनों के लिए संकट उत्पन्न करता है।

अन्तिम चरण में कवि एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं कि राज्य की समस्त सम्पत्तियाँ, उन्नति एवं स्थिरता उसी स्थान पर निवास करती हैं, जहाँ राजा और मन्त्री परस्पर विश्वास, सहयोग एवं अनुकूलता के साथ कार्य करते हैं। यदि राजा और मन्त्री के मध्य मतभेद, अविश्वास अथवा अहंकार हो, तो राज्य का पतन निश्चित हो जाता है। इस प्रकार भारवि ने इस श्लोक में राजनीतिक प्रशासन, मन्त्रिपरिषद् तथा नेतृत्व-कला का अत्यन्त गम्भीर सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में प्रश्नालंकार का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग हुआ है— 'स किं सखा'?, 'स किं प्रभुः'?
2. अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। मित्र एवं राजा के गुणों के माध्यम से सार्वभौमिक नीति का प्रतिपादन किया गया है।

3. भाषा अत्यन्त परिमार्जित, ओजस्वी एवं अर्थगौरवयुक्त है।

4. ओजगुण तथा प्रसादगुण की प्रधानता है।

5. श्लोक में राजनीति, मित्रता एवं प्रशासन का अत्यन्त सन्तुलित समन्वय है।

6. भारवि की सूक्तिपरक एवं नीतिप्रधान शैली का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।

श्लोक-6

तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया, तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।
समुन्नयन् भूतिमनार्यसङ्गमात्,वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।।

(किरातार्जुनीयम्-1/8)

सन्दर्भ-प्रसंग:-*प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोक में गुप्तचर ने धर्मराज युधिष्ठिर को बताया कि राजसिंहासन पर आसीन होने पर भी दुर्योधन आपके पराक्रम एवं प्रभाव से भयभीत रहता है और कूटनीति द्वारा अपनी शक्ति को बढ़ाने का प्रयास करता है। प्रस्तुत श्लोक में वह आगे कहता है कि यद्यपि दुर्योधन स्वभाव से कुटिल है, तथापि आपको पराजित करने की तीव्र इच्छा के कारण वह अपने गुणों, राज्य-व्यवस्था तथा यश की वृद्धि में निरन्तर प्रयत्नशील है। साथ ही कवि एक सार्वकालिक नीति का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि महापुरुषों के साथ विरोध भी कल्याणकारी होता है, जबकि दुष्टों की संगति सर्वथा अनिष्टकारी होती है।*

अर्थ:-*फिर भी वह कुटिल स्वभाव वाला दुर्योधन आपको पराजित करने की इच्छा से अपने गुणों के कारण उज्ज्वल यश का विस्तार करता है। वास्तव में दुष्टों की संगति की अपेक्षा महापुरुषों के साथ विरोध भी अधिक कल्याणकारी होता है, क्योंकि वह भी उन्नति का कारण बन जाता है।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने महापुरुषों के प्रभाव तथा श्रेष्ठ प्रतिस्पर्धा का अत्यन्त गम्भीर एवं प्रेरणादायक विवेचन किया है। गुप्तचर कहता है कि दुर्योधन यद्यपि स्वभाव से कुटिल एवं अधार्मिक है, फिर भी वह युधिष्ठिर जैसे महान् प्रतिद्वन्द्वी को पराजित करने की तीव्र इच्छा रखता है। इसी उद्देश्य से वह अपने राज्य को सुदृढ़ बनाता है, योग्य व्यक्तियों का सम्मान करता है, प्रशासन को व्यवस्थित करता है तथा अपने यश का विस्तार करने का प्रयास करता है। अर्थात् श्रेष्ठ प्रतिद्वन्द्वी भी व्यक्ति को आत्मविकास के लिए प्रेरित करता है। यदि सामने महान् व्यक्तित्व हो, तो उससे प्रतिस्पर्धा करने वाला भी अपनी योग्यताओं को विकसित करने का प्रयास करता है।

*अन्तिम चरण में कवि एक अत्यन्त प्रसिद्ध नीति प्रस्तुत करते हैं— **"वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः"**, अर्थात् दुष्टों की संगति से तो महापुरुषों के साथ विरोध भी श्रेष्ठ है। क्योंकि दुष्टों की संगति मनुष्य को अधोगति की ओर ले जाती है, जबकि महापुरुषों के साथ विरोध अथवा प्रतिस्पर्धा भी व्यक्ति के भीतर परिश्रम, अनुशासन, आत्मविकास एवं श्रेष्ठता की प्रेरणा उत्पन्न करती है। यह श्लोक केवल राजनीति तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन का एक सार्वकालिक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों का प्रभाव सदैव कल्याणकारी होता है, चाहे वह मित्रता के रूप में हो या प्रतिस्पर्धा के रूप में।*

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में व्यतिरेक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है—महात्माओं के साथ विरोध तथा दुष्टों की संगति की तुलना।

2.अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग है, क्योंकि दुर्योधन के उदाहरण से सामान्य नीति का प्रतिपादन किया गया है।

3. भाषा अत्यन्त अर्थगौरवयुक्त, समास-प्रधान एवं ओजस्वी है।

4. प्रसादगुण तथा ओजगुण की प्रधानता है।

5. अन्तिम चरण— "वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः" —अत्यन्त प्रसिद्ध नीति-सूक्ति है।

6. श्लोक में नीति, मनोविज्ञान तथा चरित्र-दर्शन का उत्कृष्ट समन्वय है।

***श्लोक-**7*

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः,समानमानान् सहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः,कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।।

(किरातार्जुनीयम्-1/10)

***सन्दर्भ- प्रसंगः-**प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में वर्णलिङ्गी गुप्तचर ने धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन की राजनीति, पुरुषार्थ तथा राज्य-व्यवस्था का वर्णन किया है। प्रस्तुत श्लोक में वह दुर्योधन के व्यवहार-कौशल का उल्लेख करते हुए कहता है कि यद्यपि दुर्योधन स्वभाव से कुटिल है, तथापि शासन-कार्य में वह अपने अनुचरों, मन्त्रियों तथा बन्धु-बान्धवों के साथ अत्यन्त विनम्र एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार करता है। वह अहंकार का त्याग करके सेवकों को मित्रों के समान, मित्रों को समान सम्मान देकर तथा बन्धुओं के साथ सहृदयता का व्यवहार करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके अधिकार-सम्पन्न शासन में भी पारस्परिक बन्धुत्व की भावना विद्यमान हो।*

***अर्थः-** वह (दुर्योधन) अहंकाररहित होकर अपने सेवकों के साथ मित्रों जैसा प्रेमपूर्ण व्यवहार करता है तथा अपने बन्धुओं के साथ समान सम्मान एवं सहृदयता रखता है। इस प्रकार वह अपने अधिकारपूर्ण शासन में भी मानो वास्तविक बन्धुत्व का व्यवहार करता हुआ दिखाई देता है।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने दुर्योधन की व्यवहार-कुशलता एवं नेतृत्व-कौशल का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। गुप्तचर कहता है कि यद्यपि दुर्योधन के चरित्र में अनेक दोष हैं, तथापि राजनीतिक दृष्टि से वह अत्यन्त व्यवहारकुशल है। वह अपने सेवकों के साथ कठोर या अपमानजनक व्यवहार नहीं करता, बल्कि उन्हें मित्रों के समान स्नेह देता है। इससे उसके अनुचर उसके प्रति निष्ठावान बने रहते हैं। इसी प्रकार वह अपने मन्त्रियों, मित्रों तथा बन्धु-बान्धवों को भी उचित सम्मान देता है। उसके व्यवहार में बाह्य रूप से अहंकार का प्रदर्शन नहीं दिखाई देता। इसलिए लोग उसके शासन में आत्मीयता एवं विश्वास का अनुभव करते हैं। कवि यहाँ यह संकेत करते हैं कि एक सफल शासक केवल पराक्रम से नहीं, बल्कि अपने सहयोगियों के साथ सम्मानपूर्ण एवं स्नेहपूर्ण व्यवहार से भी राज्य को सुदृढ़ बनाता है। सेवकों को केवल आदेश देने से नहीं, बल्कि उन्हें सम्मान देने से उनकी निष्ठा दृढ़ होती है। किन्तु भारवि का उद्देश्य

दुर्योधन की प्रशंसा करना नहीं है, बल्कि यह दिखाना है कि राजनीतिक सफलता के लिए व्यवहार-कौशल भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यदि दुष्ट स्वभाव वाला व्यक्ति भी उत्तम व्यवहार अपनाता है, तो उसकी शक्ति और प्रभाव में वृद्धि होती है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग है— "सखीनिव"।
2. "कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्" में अधिकार और बन्धुत्व का सुन्दर भावात्मक समन्वय है।
3. भाषा अत्यन्त अर्थगौरवयुक्त, समास-प्रधान एवं प्रसादपूर्ण है।
4. प्रसादगुण एवं ओजगुण की प्रधानता है।
5. चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक है।
6. नीति, नेतृत्व एवं व्यवहार-कौशल का उत्कृष्ट समन्वय इस श्लोक की प्रमुख विशेषता है।

श्लोक-8

महाजसो मानधना धनार्चिताः, धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः, प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम्॥

(किरातार्जुनीयम्-1/19)

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में वर्णलिङ्गी गुप्तचर ने धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन के शासन में कृषि-समृद्धि, राजवैभव, प्रजासुख तथा राज्य की आर्थिक उन्नति का वर्णन किया है। प्रस्तुत श्लोक में वह दुर्योधन की सेना, वीर सैनिकों की निष्ठा तथा सैन्य-संगठन का चित्रण करता है। वह कहता है कि उसकी सेना में ऐसे वीर धनुर्धर हैं जो महान् यश से सम्पन्न, सम्मान को ही अपना धन मानने वाले तथा युद्धभूमि में कीर्ति अर्जित करने वाले हैं। वे परस्पर संगठित रहते हैं, उनके विचारों में कोई मतभेद नहीं है तथा वे अपने स्वामी के हित के लिए अपने प्राणों का भी त्याग करने को सदैव तत्पर रहते हैं। इस प्रकार कवि ने आदर्श सैन्यबल के गुणों का अत्यन्त प्रभावशाली निरूपण किया है।

अर्थ:-उसकी सेना के धनुर्धर महान् यशस्वी, सम्मान को ही अपना धन मानने वाले तथा युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले हैं। वे परस्पर संगठित और एकमत रहते हैं तथा अपने स्वामी के प्रिय कार्यों को पूरा करने के लिए अपने प्राणों का भी बलिदान करने को तत्पर रहते हैं।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने आदर्श सेना के स्वरूप तथा सैनिकों के चरित्र का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। गुप्तचर कहता है कि दुर्योधन की सेना के सैनिक केवल वेतन या धन के लिए युद्ध नहीं करते। वे महान् यश के अधिकारी हैं और सम्मान को ही अपना वास्तविक धन मानते हैं। युद्धभूमि में विजय और कीर्ति ही उनके जीवन का परम लक्ष्य है। वे परस्पर पूर्णतः संगठित रहते हैं। उनके बीच ईर्ष्या, मतभेद या स्वार्थ नहीं है। सभी का उद्देश्य एक ही है—अपने राजा और राज्य की रक्षा। इतना ही नहीं, वे अपने स्वामी के हित के लिए प्राणों का भी मोह नहीं करते। यदि आवश्यकता पड़े तो वे अपने जीवन का बलिदान देकर भी राजधर्म और स्वामी के कार्य को सफल बनाना चाहते हैं।

महाकवि भारवि यहाँ यह प्रतिपादित करते हैं कि किसी भी राज्य की वास्तविक शक्ति उसके शस्त्रों में नहीं, बल्कि ऐसे निष्ठावान्, अनुशासित, संगठित और त्यागी सैनिकों में निहित होती है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. *प्रस्तुत श्लोक में वीररस की प्रधानता है।*
2. *"मानधनाः" एक अत्यन्त अर्थगर्भित प्रयोग है, जिससे सैनिकों की उच्च आदर्शवादिता प्रकट होती है।*
3. *"असुभिः समीहितुम्" में सैनिकों के त्याग एवं स्वामिभक्ति का सशक्त चित्रण हुआ है।*
4. *भाषा समास-प्रधान, ओजस्वी एवं अर्थगौरवयुक्त है।*
5. *ओजगुण की विशेष प्रधानता है।*
6. *सैनिकों के चरित्र, संगठन एवं निष्ठा का यथार्थ चित्रण इस श्लोक की प्रमुख विशेषता है।*

श्लोक-9

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति, प्रशासदावारिधिमण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती,अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।।

(किरातार्जुनीयम्-1/23)

सन्दर्भ-प्रसंग:-*प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस सर्ग में वर्णलिङ्गी गुप्तचर धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन के शासन, प्रशासन, सैन्यबल, राजवैभव तथा राजनीतिक सामर्थ्य का यथार्थ वर्णन करता है। प्रस्तुत श्लोक में वह दुर्योधन की सार्वभौम सत्ता, राजनीतिक दूरदर्शिता एवं सतत् सावधानी का निरूपण करता है। वह बताता है कि यद्यपि दुर्योधन ने अनेक राजाओं को अपने अधीन कर सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपना शासन दृढ़ कर लिया है, तथापि वह भविष्य में उत्पन्न होने वाले शक्तिशाली विरोधी की सम्भावना से सदा चिन्तित रहता है। कवि अन्त में यह नीति प्रतिपादित करते हैं कि बलवान् पुरुष का विरोध अत्यन्त भयावह एवं अनिष्टकारी होता है।*

अर्थ:- *वह (दुर्योधन) अनेक अधीनस्थ राजाओं सहित समुद्र-पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर दृढ़तापूर्वक शासन करता है, फिर भी वह इस आशंका से सदा चिन्तित रहता है कि भविष्य में कोई शक्तिशाली शत्रु उत्पन्न न हो जाए। वास्तव में, बलवान् व्यक्ति का विरोध अत्यन्त भयंकर होता है।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने राजनीतिक यथार्थ, दूरदर्शिता तथा सतर्क शासन का अत्यन्त गम्भीर चित्र प्रस्तुत किया है। गुप्तचर कहता है कि दुर्योधन ने अपने पराक्रम एवं नीति-कौशल से अनेक राजाओं को अपने अधीन कर लिया है। उसका साम्राज्य समुद्र-पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी पर विस्तृत एवं सुदृढ़ है। शासन-व्यवस्था भी अत्यन्त संगठित और स्थिर है। किन्तु इतना विशाल साम्राज्य प्राप्त कर लेने पर भी वह प्रमाद नहीं करता। उसके मन में सदैव यह आशंका बनी रहती है कि भविष्य में कोई नया शक्तिशाली शत्रु उत्पन्न होकर उसके राज्य को चुनौती दे सकता है। इसलिए वह निरन्तर सावधान एवं सजग रहता है।

अन्तिम चरण में कवि अत्यन्त गम्भीर राजनीतिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं— "अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता"। अर्थात् किसी शक्तिशाली व्यक्ति का विरोध अत्यन्त भयंकर, दूरगामी एवं विनाशकारी होता है। इसलिए बुद्धिमान् शासक कभी भी शत्रु को तुच्छ नहीं समझता और विजय प्राप्त होने पर भी अपनी सतर्कता नहीं छोड़ता। यह श्लोक केवल दुर्योधन की मनोवृत्ति का वर्णन नहीं करता, बल्कि राजनीति का शाश्वत सिद्धान्त भी प्रतिपादित करता है कि सफलता के बाद भी सावधानी ही सुरक्षा का आधार है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. "अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता" सम्पूर्ण श्लोक का सूक्तिपरक एवं सर्वाधिक प्रभावशाली चरण है।
2. यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है; दुर्योधन के उदाहरण द्वारा सार्वकालिक राजनीतिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है।
3. श्लोक में वीररस तथा नीतिरस का समन्वय है।
4. भाषा समास-प्रधान, अर्थगौरवयुक्त एवं ओजस्वी है।
5. ओजगुण की विशेष प्रधानता है।
6. भारवि की नीतिपरक दृष्टि तथा राजनीतिक यथार्थवाद इस श्लोक में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

श्लोक-10

कथाप्रसङ्गेन जनैरूदाहृतादनुस्मृताखण्डसूनुः विक्रमः।
तवाभिधानाद्व्यथते नताननः स दुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः॥

(किरातार्जुनीयम्-1/24)

सन्दर्भ- प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भारवि विरचित 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस सर्ग में वर्णलिङ्गी गुप्तचर धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष दुर्योधन की शासन-व्यवस्था, राज्य-शक्ति, नीति, सैन्य-संगठन तथा उसकी मानसिक प्रवृत्तियों का यथार्थ वर्णन कर रहा है। प्रस्तुत श्लोक में वह दुर्योधन के अन्तर्मन में विद्यमान पाण्डवों के पराक्रम के प्रति भय, युधिष्ठिर के प्रति सम्मान तथा मानसिक अस्थिरता का सूक्ष्म चित्रण करता है। वह कहता है कि जब सामान्य लोग वार्तालाप के प्रसंग में पाण्डुपुत्रों के पराक्रम का उल्लेख करते हैं, तब दुर्योधन का मन व्याकुल हो उठता है। विशेषतः युधिष्ठिर का नाम सुनते ही वह लज्जा से सिर झुका लेता है और मन्त्र के प्रभाव से पीड़ित सर्प के समान विचलित हो जाता है। यहाँ कवि ने धर्म एवं यश की नैतिक शक्ति का अत्यन्त प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया है।

अर्थ:- जब लोग बातचीत के प्रसंग में पाण्डुपुत्रों के पराक्रम का स्मरण करते हैं, तब आपका (युधिष्ठिर का) नाम सुनते ही दुर्योधन लज्जा से सिर झुका लेता है और मन्त्र के प्रभाव से व्याकुल हुए सर्प के समान अत्यन्त पीड़ित हो जाता है।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भारवि ने दुर्योधन की आन्तरिक मानसिक स्थिति का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। गुप्तचर कहता है कि जब सामान्य लोग बातचीत के क्रम में पाण्डवों के शौर्य, पराक्रम और

यश का स्मरण करते हैं, तब दुर्योधन के मन में गहरी चिन्ता और भय उत्पन्न हो जाता है। पाण्डवों की कीर्ति उसे उसके अन्यायपूर्ण आचरण का स्मरण करा देती है।

विशेषतः जब युधिष्ठिर का नाम लिया जाता है, तब दुर्योधन का मुख लज्जा से झुक जाता है। वह भीतर ही भीतर अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। उसके मन की यह व्याकुलता इतनी तीव्र होती है कि कवि उसकी तुलना मन्त्रबाधित सर्प से करते हैं। जिस प्रकार मन्त्र के प्रभाव से सर्प अपना स्वाभाविक बल खोकर असहाय एवं व्यथित हो जाता है, उसी प्रकार दुर्योधन भी युधिष्ठिर के नाममात्र से मानसिक रूप से विचलित हो जाता है। इस प्रकार कवि यह प्रतिपादित करते हैं कि धर्म, सत्य एवं सदाचार का प्रभाव इतना प्रबल होता है कि वह शत्रु के हृदय में भी भय, लज्जा एवं सम्मान उत्पन्न कर देता है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. "मन्त्रपदादिवोरगः" में उपमा अलंकार का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है।
2. दुर्योधन की मनोवैज्ञानिक अवस्था का अत्यन्त सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण किया गया है।
3. भाषा समास-प्रधान, अर्थगौरवयुक्त तथा ओजस्वी है।
4. ओजगुण तथा प्रसादगुण की प्रधानता है।
5. अन्तिम चरण सम्पूर्ण श्लोक का सर्वाधिक प्रभावशाली भाग है।
6. महाकवि भारवि की अर्थगौरवयुक्त शैली एवं चरित्र-चित्रण की अद्भुत क्षमता इस श्लोक में परिलक्षित होती है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1.किरातार्जुनीयम् महाकाव्य का प्रतिपाद्य विषय की समीक्षा कीजिए

महाकवि भारवि संस्कृत के महान् महाकाव्यकारों में अग्रगण्य हैं। उनका एकमात्र उपलब्ध महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' संस्कृत साहित्य की बृहत्त्रयी (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्) का प्रथम एवं अत्यन्त गौरवपूर्ण ग्रन्थ है। यह महाभारत के वनपर्व में वर्णित किरातार्जुनीय-उपाख्यान पर आधारित है। किरातार्जुनीयम् का प्रतिपाद्य विषय केवल अर्जुन और भगवान् शिव के युद्ध का वर्णन नहीं है, अपितु पुरुषार्थ, तपस्या, आत्मसंयम, धैर्य, नीति, पराक्रम तथा ईश्वरकृपा के माध्यम से असम्भव को सम्भव बनाने की प्रेरणा इसका मूल विषय है।

महाकाव्य का केन्द्रीय कथानक यह है कि वनवास के समय महर्षि व्यास के उपदेशानुसार अर्जुन दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या करते हैं। अर्जुन की दृढ़ निष्ठा, आत्मबल एवं तप की परीक्षा लेने के लिए भगवान् शिव किरात (वनवासी शिकारी) का रूप धारण करते हैं। दोनों के मध्य भीषण युद्ध होता है। अन्ततः अर्जुन अपनी वीरता, धैर्य, विनय एवं भक्ति से भगवान् शिव को प्रसन्न कर लेते हैं। प्रसन्न होकर भगवान् शिव उन्हें पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं। यही महाकाव्य का मुख्य कथानक एवं प्रतिपाद्य है।

किन्तु भारवि का उद्देश्य केवल कथा-वर्णन नहीं है। उन्होंने इस कथा के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ, तप, आत्मविश्वास, संयम, नीति तथा ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा अनिवार्य है। केवल भाग्य पर आश्रित रहने से सफलता नहीं मिलती; अपितु निरन्तर परिश्रम एवं आत्मबल से ही विजय प्राप्त होती है। महाकाव्य में राजनीति, कूटनीति, धर्म, दर्शन, समाजनीति, राजधर्म, क्षात्रधर्म तथा लोकव्यवहार का अत्यन्त गम्भीर एवं विद्वत्तापूर्ण

विवेचन हुआ है। विशेषतः द्वितीय सर्ग में द्रौपदी तथा भीम के संवाद और युधिष्ठिर के उत्तरों में भारवि की राजनीतिक एवं नैतिक दृष्टि का उत्कृष्ट परिचय मिलता है।

कवि ने अर्जुन के चरित्र के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि वीरता तभी सार्थक है, जब उसके साथ विनय, आत्मसंयम, विवेक तथा धर्मनिष्ठा भी हो। इसी प्रकार भगवान् शिव का किरात-वेष यह सन्देश देता है कि ईश्वर मनुष्य की पात्रता की परीक्षा लेकर ही उसे महान् उपलब्धियाँ प्रदान करते हैं।

इस महाकाव्य का एक महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य यह भी है कि तप एवं पुरुषार्थ का समन्वय ही सफलता का वास्तविक आधार है। अर्जुन केवल प्रार्थना नहीं करते, बल्कि कठोर तपस्या एवं सतत् प्रयास के द्वारा स्वयं को दिव्यास्त्र प्राप्त करने योग्य सिद्ध करते हैं। इसलिए किरातार्जुनीयम् कर्मयोग, आत्मबल तथा पुरुषार्थ का महाकाव्य भी कहा जाता है।

साहित्यिक दृष्टि से भी इस महाकाव्य में वीररस का उत्कर्ष है, किन्तु उसके साथ शान्तरस, अद्भुतरस तथा रौद्ररस का भी उत्कृष्ट समन्वय मिलता है। भारवि ने कथा के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि धर्मयुक्त पराक्रम ही वास्तविक विजय का आधार है।

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि महाकवि भारवि-विरचित किरातार्जुनीयम् का प्रतिपाद्य विषय अर्जुन की तपस्या, पुरुषार्थ, आत्मसंयम, धर्मनिष्ठा एवं भगवान् शिव की कृपा द्वारा पाशुपतास्त्र की प्राप्ति का वर्णन करते हुए मानव-जीवन में पुरुषार्थ, नीति, तप, धैर्य, ईश्वर-भक्ति एवं धर्मयुक्त वीरता की प्रतिष्ठा करना है। यह महाकाव्य केवल एक पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि पुरुषार्थवाद, आदर्श चरित्र-निर्माण तथा जीवन-दर्शन का कालजयी महाकाव्य है।

प्रश्न-2.महाकवि भारवि-विरचित किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के प्रथम सर्ग का सारांश लिखिए

महाकवि भारवि विरचित किरातार्जुनीयम् का प्रथम सर्ग "वनचरः" नाम से प्रसिद्ध है। इस सर्ग में कवि ने महाभारत के वनपर्व से कथानक ग्रहण करते हुए पाण्डवों के वनवास, दुर्योधन के राज्य-शासन की स्थिति तथा युधिष्ठिर के समक्ष प्रस्तुत राजनीतिक परिस्थिति का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। यह सर्ग सम्पूर्ण महाकाव्य की कथा का आधार प्रस्तुत करता है।

प्रथम सर्ग का आरम्भ एक वनचारी (किरात अथवा गुप्तचर) के युधिष्ठिर के समक्ष आगमन से होता है। युधिष्ठिर उससे हस्तिनापुर के समाचार पूछते हैं। वह वनचारी अत्यन्त विनीत भाव से दुर्योधन के राज्य की स्थिति का वर्णन करता है। वह बताता है कि दुर्योधन राज्य पर पूर्ण अधिकार के साथ शासन कर रहा है। उसके शासन में राज्य बाह्य रूप से समृद्ध, व्यवस्थित एवं सम्पन्न दिखाई देता है। प्रजा अपने-अपने धर्म एवं कर्तव्यों का पालन कर रही है तथा प्रशासन भी सुव्यवस्थित है। दुर्योधन स्वयं भी राजधर्म, अर्थनीति तथा शासन-कौशल का पालन करता हुआ प्रतीत होता है।

किन्तु वनचारी यह भी स्पष्ट करता है कि दुर्योधन का यह वैभव धर्मसम्मत नहीं, अपितु छल, अन्याय एवं अधर्म पर आधारित है। उसने पाण्डवों को कपटपूर्वक राज्य से वंचित किया है; अतः उसका शासन चाहे जितना सुचारु क्यों न दिखाई दे, वह नैतिक दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता।

वनचारी की बातें सुनकर युधिष्ठिर गम्भीर चिन्तन में निमग्न हो जाते हैं। वे परिस्थिति की गम्भीरता को समझते हैं, किन्तु धर्म से विचलित नहीं होते। वे जानते हैं कि समय की प्रतीक्षा तथा धैर्य ही इस समय उनका सबसे बड़ा बल है। इस प्रकार युधिष्ठिर के धैर्य, धर्मनिष्ठा एवं गम्भीर व्यक्तित्व का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण हुआ है।

प्रथम सर्ग में भारवि ने केवल कथा का आरम्भ ही नहीं किया है, बल्कि राजनीति, राजधर्म एवं आदर्श शासन के अनेक सिद्धान्तों का भी विवेचन किया है। दुर्योधन के शासन का वर्णन करते हुए कवि यह संकेत करते हैं कि केवल प्रशासनिक दक्षता ही पर्याप्त नहीं है; शासन की वास्तविक सफलता धर्म, न्याय एवं नैतिकता पर आधारित होती है।

इस सर्ग की एक विशेषता यह भी है कि इसमें भारवि की अर्थगौरवयुक्त शैली का उत्कृष्ट परिचय मिलता है। अल्प शब्दों में गम्भीर अर्थ व्यक्त करना, राजनीति एवं धर्म का समन्वय, प्रकृति एवं चरित्र-चित्रण की प्रभावशाली शैली तथा संस्कृत भाषा का परिमार्जित एवं ओजस्वी रूप इस सर्ग की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर की धैर्यशीलता, वनचारी की राजनीतिक सूझ-बूझ तथा दुर्योधन के शासन का यथार्थ मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए कवि आगामी सर्गों की कथा के लिए सुदृढ़ भूमिका निर्मित करते हैं।

निष्कर्ष

किरातार्जुनीयम् का प्रथम सर्ग सम्पूर्ण महाकाव्य का भूमिका-सर्ग है। इसमें वनचारी द्वारा दुर्योधन के राज्य का वर्णन, युधिष्ठिर की धर्मनिष्ठ एवं धैर्यपूर्ण प्रतिक्रिया तथा तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। इस सर्ग के माध्यम से महाकवि भारवि यह प्रतिपादित करते हैं कि धर्म, धैर्य, दूरदर्शिता एवं नीति ही अन्ततः विजय के वास्तविक आधार हैं। यही भाव आगे चलकर अर्जुन की तपस्या एवं भगवान् शिव से पाशुपतास्त्र-प्राप्ति की कथा की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

प्रश्न-3.किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के आधार पर महाकवि भारवि की काव्यकला प्रस्तुत कीजिए

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के महान् महाकाव्यकारों में अग्रगण्य हैं। उनका एकमात्र उपलब्ध महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' संस्कृत महाकाव्य-परम्परा का अनुपम रत्न है। संस्कृत साहित्य में "उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्, दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः"—इस प्रसिद्ध उक्ति द्वारा भारवि के अर्थगौरव की विशेष प्रशंसा की गई है। किरातार्जुनीयम् के अध्ययन से उनकी काव्यप्रतिभा, गहन पाण्डित्य तथा कलात्मक कौशल का परिचय प्राप्त होता है।

१. अर्थगौरव (गम्भीर अर्थ-वैभव):- *भारवि की काव्यकला का सर्वप्रमुख वैशिष्ट्य अर्थगौरव है। वे अल्प शब्दों में अत्यन्त गम्भीर एवं बहुआयामी भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। उनके प्रत्येक श्लोक में गहन चिन्तन, नीति, दर्शन एवं जीवनानुभव निहित रहता है। एक ही श्लोक अनेक स्तरों पर अर्थ प्रदान करता है। आचार्य मल्लिनाथ ने उचित ही कहा है—"भारवेरर्थगौरवम्।"*

२. वीररस की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति:- *किरातार्जुनीयम् का अङ्गीरस वीररस है। अर्जुन की तपस्या, युद्ध-कौशल, भगवान् शिव के साथ युद्ध तथा पाशुपतास्त्र-प्राप्ति का वर्णन अत्यन्त ओजस्वी एवं उत्साहवर्धक है। कवि ने वीररस के साथ रौद्र, अद्भुत तथा शान्तरस का भी अत्यन्त सफल समन्वय किया है।*

३.चरित्र-चित्रण की अद्भुत क्षमता:- *भारवि ने पात्रों का मनोवैज्ञानिक एवं आदर्शोन्मुख चित्रण किया है।*

युधिष्ठिर — धर्मनिष्ठ, धैर्यवान् एवं दूरदर्शी।

भीम — उत्साही, स्पष्टवादी एवं पराक्रमी।

द्रौपदी — स्वाभिमानी एवं प्रेरणादायिनी।

अर्जुन — तपस्वी, वीर, विनयी एवं कर्तव्यनिष्ठ।

भगवान् शिव — परीक्षक, करुणामय एवं भक्तवत्सल।

प्रत्येक पात्र अपने स्वभाव के अनुरूप ही व्यवहार करता है।

४. नीति एवं राजनीति का गम्भीर विवेचन:- किरातार्जुनीयम् केवल वीरकाव्य नहीं, बल्कि उत्कृष्ट राजनीतिक एवं नीतिशास्त्रीय ग्रन्थ भी है। विशेषतः द्वितीय सर्ग में राज्यशास्त्र, कूटनीति, युद्धनीति, मन्त्रणा तथा राजधर्म का अत्यन्त गम्भीर विवेचन मिलता है।

५. प्रकृति-चित्रण की सजीवता:- भारवि ने हिमालय, वन, नदी, पर्वत, ऋतुओं तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का अत्यन्त सजीव एवं चित्रात्मक वर्णन किया है। उनका प्रकृति-वर्णन केवल शोभा-वर्णन नहीं, बल्कि पात्रों की मनःस्थिति के अनुरूप भी है।

६. वर्णन-कौशल:- महाकवि भारवि की वर्णन-शैली अत्यन्त प्रभावशाली है। उन्होंने—

हिमालय-वर्णन, अर्जुन की तपस्या, किरात-रूपधारी शिव का स्वरूप, युद्ध-वर्णन, दिव्यास्त्रों का प्रभाव आदि का अत्यन्त सजीव एवं कलात्मक चित्रण किया है।

७. अलंकार-योजना:- भारवि अलंकारों के अत्यन्त कुशल शिल्पी हैं। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग केवल चमत्कार के लिए नहीं, बल्कि भावाभिव्यक्ति की प्रभावशीलता के लिए किया है।

प्रमुख अलंकार— उपमा,रूपक,उत्प्रेक्षा,अर्थान्तरन्यास,श्लेष,अनुप्रास,यमक,विरोधाभास,दृष्टान्त,इनका प्रयोग स्वाभाविक एवं कलात्मक है।

८. भाषा-सौष्ठव:- भारवि की भाषा अत्यन्त परिमार्जित, संस्कृतनिष्ठ, व्याकरणसम्मत एवं अर्थसमृद्ध है। उनकी भाषा में—ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुणों का सुन्दर समन्वय मिलता है; तथापि ओजगुण की विशेष प्रधानता है।

९. समास-बहुल शैली:- भारवि की भाषा की प्रमुख विशेषता दीर्घ एवं सघन समासों का प्रयोग है। इन समासों के कारण उनकी शैली गम्भीर, प्रभावशाली एवं अर्थसमृद्ध बन गई है।

१०. छन्द-विविधता:- किरातार्जुनीयम् में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक प्रसंग के अनुरूप छन्दों का चयन किया गया है। इससे काव्य में लय, माधुर्य एवं प्रभाव की वृद्धि हुई है।

११. पाण्डित्य-प्रदर्शन:- भारवि वेद, उपनिषद्, महाभारत, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, व्याकरण, मीमांसा तथा दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके काव्य में विविध शास्त्रों का गम्भीर ज्ञान सहज रूप से अभिव्यक्त हुआ है। यह पाण्डित्य कहीं भी कृत्रिम नहीं प्रतीत होता।

१२. संवाद-योजना:- भारवि संवाद-रचना में अत्यन्त कुशल हैं। विशेषतः—द्रौपदी–युधिष्ठिर संवाद,भीम–युधिष्ठिर संवाद,अर्जुन–किरात संवाद,अत्यन्त स्वाभाविक, तर्कपूर्ण एवं प्रभावशाली हैं।

१३. दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि:- किरातार्जुनीयम् में कर्म, पुरुषार्थ, तप, धर्म, ईश्वरकृपा तथा आत्मसंयम का अत्यन्त गम्भीर प्रतिपादन हुआ है। भारवि केवल कवि नहीं, बल्कि गम्भीर दार्शनिक भी हैं।

१४. महाकाव्य के सभी लक्षणों की सम्पन्नता:- किरातार्जुनीयम् में महाकाव्य के सभी अपेक्षित लक्षण विद्यमान हैं— मंगलाचरण,उच्चकुलोत्पन्न नायक,ऐतिहासिक-पौराणिक कथानक,वीररस की प्रधानता,प्रकृति-वर्णन,नगर-वर्णन,ऋतु-वर्णन,पर्वत-वर्णन,युद्ध-वर्णन,नीति एवं धर्म का प्रतिपादन,सर्गबद्ध रचना।

समालोचनात्मक मूल्यांकन

महाकवि भारवि की काव्यकला का मूल आधार अर्थगौरव, ओजस्विता, पाण्डित्य, नीति, चरित्र-चित्रण तथा कलात्मक अभिव्यक्ति है। उनकी शैली कालिदास की अपेक्षा अधिक गम्भीर तथा चिन्तनप्रधान है। जहाँ कालिदास हृदय के कवि हैं, वहाँ भारवि बुद्धि एवं विचार के कवि हैं। उनके प्रत्येक श्लोक में गहन चिन्तन, सशक्त भाषा तथा कलात्मक संयोजन का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है।

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के अर्थगौरव-सम्पन्न, ओजस्वी एवं पाण्डित्यपूर्ण महाकवि हैं। किरातार्जुनीयम् में उनकी गम्भीर चिन्तनशक्ति, नीति-निपुणता, चरित्र-चित्रण-कौशल, प्रकृति-वर्णन, अलंकार-योजना, भाषा-सौष्ठव तथा वीररस की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण संस्कृत साहित्य में यह उक्ति सर्वमान्य हो गई है—

उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

यह उक्ति महाकवि भारवि की काव्यप्रतिभा का सर्वाधिक प्रामाणिक एवं संक्षिप्त मूल्यांकन प्रस्तुत करती है।

ख.कुमारसंभवम् महाकाव्य-प्रथम सर्ग: श्लोक-1 से 25

(महत्त्वपूर्ण पद्यों की व्याख्या)

श्लोक-1

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालय नाम नागाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

(कुमारसम्भवम्-1/1)

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। इस श्लोक में कवि हिमालय पर्वत का दिव्य एवं भव्य वर्णन करते हुए उसे देवस्वरूप, पर्वतराज तथा पृथ्वी का मानदण्ड बताया है।

अर्थ:- उत्तर दिशा में हिमालय नाम का एक देवस्वरूप पर्वतराज है। वह पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रों तक फैला हुआ पृथ्वी के मानदण्ड (मापदण्ड) के समान स्थित है।

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास ने इस श्लोक में हिमालय की भव्यता एवं महानता का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। वे हिमालय को केवल पर्वत न मानकर देवतात्मा कहते हैं। हिमालय पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रों तक विस्तृत होकर पृथ्वी के मानदण्ड के समान अटल एवं विशाल रूप में स्थित है। यह भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता तथा प्राकृतिक वैभव का प्रतीक है।

काव्यगत सौन्दर्य

1.रस — अद्भुत रस

***2.**छन्द — वसन्ततिलका*

***3.**अलंकार — उपमा अलंकार (मानदण्डः इव)*

***4.**रीति — वैदर्भी*

***5.**गुण — प्रसाद एवं ओज*

***6.**शैली — वर्णनात्मक*

यह श्लोक हिमालय की दिव्यता, विशालता एवं गौरव का अनुपम चित्रण करता है। महाकवि कालिदास ने अपनी अद्भुत उपमाओं, सरल किन्तु प्रभावशाली भाषा तथा प्रकृति-चित्रण के माध्यम से हिमालय को भारतीय संस्कृति और राष्ट्रगौरव के शाश्वत प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

श्लोक-2

यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं, मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च, पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्।।2।।

(कुमारसम्भवम्-1/2)

***सन्दर्भ-प्रसंग**:-प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। प्रथम श्लोक में हिमालय की महिमा का वर्णन करने के उपरान्त इस श्लोक में कवि पौराणिक कथा के माध्यम से हिमालय की श्रेष्ठता का वर्णन करते हैं। राजा पृथु के आदेश पर पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा तथा मेरु को दुहने वाला बनाकर पृथ्वी से रत्न एवं दिव्य औषधियों का दुहन किया।*

***अर्थ**:-जब दुहने में निपुण मेरु पर्वत दुहने वाले बने और सभी पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा बनाया, तब राजा पृथु की आज्ञा से उन्होंने पृथ्वी का दुहन किया और उससे चमकदार रत्न तथा दिव्य औषधियाँ प्राप्त कीं।*

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास इस श्लोक में पौराणिक कथा का वर्णन करते हैं। पुराणों के अनुसार राजा पृथु ने प्रजा के कल्याण के लिए पृथ्वी का दुहन कराया। उस समय मेरु पर्वत दुहने वाले बने और हिमालय को बछड़ा बनाया गया। तब समस्त पर्वतों ने पृथ्वी से बहुमूल्य रत्न एवं दिव्य औषधियाँ प्राप्त कीं। इस वर्णन द्वारा कवि हिमालय की महत्ता, पृथ्वी की समृद्धि तथा प्राकृतिक सम्पदा का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण करते हैं।

काव्यगत सौन्दर्य

1.रस — अद्भुत रस

2.छन्द — वसन्ततिलका

3.अलंकार — रूपक, अनुप्रास

4.रीति — वैदर्भी

5.गुण — प्रसाद एवं ओज

6.शैली — वर्णनात्मक

यह श्लोक हिमालय की महिमा, पृथ्वी की समृद्धि तथा भारतीय पौराणिक परम्परा का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करता है। महाकवि कालिदास ने अपनी कल्पना, उपमा एवं वर्णन-कौशल के माध्यम से हिमालय को प्राकृतिक वैभव, समृद्धि एवं भारतीय संस्कृति के गौरव-प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

श्लोक-3

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य, हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।।

(कुमारसम्भवम्-1/3)

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्व श्लोक में कवि ने हिमालय की रत्न-सम्पदा एवं दिव्य औषधियों का वर्णन किया। इस श्लोक में वे कहते हैं कि हिमालय में विद्यमान हिम (बर्फ) उसके सौन्दर्य या वैभव को कम नहीं करता, क्योंकि असंख्य गुणों के बीच एक छोटा-सा दोष दब जाता है।*

अर्थ:-*जो हिमालय अनन्त रत्नों का भण्डार है, उसके ऊपर स्थित हिम भी उसके सौन्दर्य को नष्ट नहीं करता। जैसे चन्द्रमा का छोटा-सा कलंक उसकी उज्ज्वल किरणों में छिप जाता है, वैसे ही अनेक गुणों के बीच एक दोष महत्वहीन हो जाता है।*

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास इस श्लोक में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नीति का प्रतिपादन करते हैं। हिमालय अनन्त रत्नों का भण्डार है। उसके ऊपर फैली हुई हिमराशि उसके वैभव को कम नहीं करती। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति में अनेक सद्गुण हों, तो उसका एक छोटा-सा दोष उसके गुणों के सामने नगण्य हो जाता है। कवि ने इसकी तुलना चन्द्रमा के कलंक से की है, जो उसकी शीतल एवं उज्ज्वल चाँदनी में दिखाई नहीं देता। इस प्रकार गुणों की अधिकता दोषों को ढक देती है।

काव्यगत सौन्दर्य

1.*रस — शान्त रस*

2. छन्द *— वसन्ततिलका*

3. *अलंकार — उपमा अलंकार (इन्दोः किरणेष्विवाङ्कः), अर्थान्तरन्यास अलंकार*

4. *रीति — वैदर्भी*

*5.**गुण** — प्रसाद एवं माधुर्य*

*6.**शैली** — नीति-प्रधान एवं वर्णनात्मक*

*इस श्लोक में कालिदास ने हिमालय के वर्णन के साथ-साथ एक सार्वकालिक नीति का भी प्रतिपादन किया है कि- **"अनेक गुणों से युक्त व्यक्ति का एक दोष उसके गुणों के सामने महत्वहीन हो जाता है"**। यह श्लोक अपने नीति-तत्त्व के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है।*

श्लोक-4

यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां, सम्पादयित्रीं शिखरैर्बिभर्ति।
बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसन्ध्यामिव धातुमत्ताम्।।

(कुमारसम्भवम्-1/4)

***सन्दर्भ-प्रसंग**:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्व श्लोकों में कवि ने हिमालय की दिव्यता, रत्न-सम्पदा एवं महिमा का वर्णन किया है। इस श्लोक में वे हिमालय के रंग-बिरंगे खनिजों (धातुओं) से सुशोभित शिखरों का वर्णन करते हुए बताते हैं कि वे अप्सराओं के श्रृंगार का साधन हैं तथा बादलों से विभक्त रंगों के कारण असमय की सन्ध्या के समान शोभायमान प्रतीत होते हैं।*

***अर्थ**:-जो हिमालय अपने धातुओं से युक्त रंग-बिरंगे शिखरों द्वारा अप्सराओं के श्रृंगार की सामग्री प्रदान करता है तथा जिनकी लालिमा बादलों के बीच-बीच में दिखाई देकर असमय की सन्ध्या के समान प्रतीत होती है, उसे धारण करता है।*

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास हिमालय की प्राकृतिक शोभा का अत्यन्त मनोहारी चित्र प्रस्तुत करते हैं। हिमालय के शिखरों में अनेक प्रकार की रंगीन धातुएँ (खनिज) विद्यमान हैं। इन्हीं धातुओं से अप्सराएँ अपने शरीर का श्रृंगार करती हैं। जब इन रंग-बिरंगे शिखरों के बीच बादलों के टुकड़े दिखाई देते हैं, तब वह दृश्य ऐसा प्रतीत होता है मानो असमय ही सन्ध्या छा गई हो। इस प्रकार कवि ने हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य को कल्पना और उपमा के माध्यम से अत्यन्त सजीव बना दिया है।

काव्यगत सौन्दर्य

***1.**रस — अद्भुत रस*

***2.**छन्द — वसन्ततिलका*

***3.**अलंकार — उपमा (अकालसन्ध्यामिव), रूपक, अनुप्रास*

***4.**रीति — वैदर्भी*

***5.**गुण — माधुर्य एवं प्रसाद*

***6.**शैली — चित्रात्मक एवं वर्णनात्मक*

यह श्लोक हिमालय की रंग-बिरंगी खनिज-सम्पदा, उसकी अलौकिक शोभा तथा कालिदास की अनुपम कल्पना-शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण, मनोहर उपमाओं और चित्रात्मक शैली के कारण यह श्लोक कुमारसम्भवम् के श्रेष्ठ वर्णनों में गिना जाता है।

श्लोक-5

आमेखलं सञ्चरतां घनानां, छायामधः सानुगतां निषेव्य।
उद्वेजितां वृष्टिभिराश्रयन्ते, श्रृङ्गाणि यस्तातपवन्ति सिद्धाः।।

(कुमारसम्भवम्-1/5)

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्व श्लोक में कवि ने हिमालय की प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया। इस श्लोक में वे हिमालय पर निवास करने वाले सिद्धों का वर्णन करते हैं, जो बादलों की छाया में विश्राम करते हैं और वर्षा होने पर धूप वाले ऊँचे शिखरों पर चले जाते हैं।*

अर्थ:-*हिमालय में रहने वाले सिद्ध पुरुष पहले पर्वत के मध्य भाग तक विचरण करने वाले मेघों की नीचे फैली हुई छाया का आनन्द लेते हैं। जब वर्षा होने लगती है, तब वे उससे बचने के लिए धूप वाले ऊँचे शिखरों का आश्रय ग्रहण कर लेते हैं।*

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास हिमालय में निवास करने वाले सिद्धों के जीवन का अत्यन्त रमणीय चित्र प्रस्तुत करते हैं। पर्वत के मध्य भाग में घूमने वाले मेघ अपनी शीतल छाया फैलाते हैं, जिसमें सिद्धजन सुखपूर्वक निवास करते हैं। किन्तु जब मेघ वर्षा करने लगते हैं, तब वे वर्षा से बचने के लिए हिमालय के ऊँचे, धूप से प्रकाशित शिखरों पर चले जाते हैं। इससे हिमालय की ऊँचाई, प्राकृतिक विविधता तथा सिद्धों के तपस्वी जीवन का सजीव चित्र उपस्थित होता है।

काव्यगत सौन्दर्य

1.रस — अद्भुत रस
2.छन्द — वसन्ततिलका
3.अलंकार — चित्र अलंकार, अनुप्रास
4.रीति — वैदर्भी
5.गुण — प्रसाद एवं माधुर्य
6.शैली — प्रकृति-चित्रणात्मक

यह श्लोक हिमालय की प्राकृतिक महिमा, उसकी ऊँचाई तथा वहाँ निवास करने वाले सिद्धों के तपोमय जीवन का सजीव एवं कलात्मक चित्रण करता है। महाकवि कालिदास ने बादलों, वर्षा और सूर्यप्रकाश के माध्यम से हिमालय के अलौकिक सौन्दर्य को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

श्लोक-6

पदं तुषारस्रुतिधौतरक्तं, यस्मिन्नदृष्ट्वाऽपि हतद्विपानाम्।
विदन्ति मार्गं नखरन्ध्रमुक्तैर्मुक्ताफलैः केसरिणां किराताः।।

(कुमारसम्भवम्-1/5)

सन्दर्भ- प्रसंग:-*प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्व श्लोक में कवि ने हिमालय में रहने वाले सिद्धों का वर्णन किया। इस श्लोक में वे हिमालय के वन्य जीवन का चित्रण करते हुए बताते हैं कि वहाँ के किरात (शिकारी) सिंहों के मार्ग का पता उनके द्वारा मारे गए हाथियों के रक्त से नहीं, बल्कि उनके नखों से गिरे हुए गजमुक्ताओं से लगा लेते हैं।*

अर्थ:-*जिस हिमालय में हिमजल की धाराओं से धुल जाने के कारण मारे गए हाथियों का रक्त दिखाई नहीं देता, वहाँ भी किरात लोग सिंहों के मार्ग का पता हाथियों के घावों से गिरी हुई गजमुक्ताओं के द्वारा लगा लेते हैं।*

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास हिमालय के वन्य जीवन का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। सिंह जब हाथियों का वध करते हैं, तब उनके शरीर से निकला रक्त हिम के पिघले हुए जल से धुल जाता है। इसलिए रक्त के चिन्ह दिखाई नहीं देते। किन्तु सिंह के तीक्ष्ण नखों से हाथियों के गण्डस्थल में स्थित गजमुक्ताएँ बाहर निकलकर भूमि पर बिखर जाती हैं। उन्हीं मुक्ताओं को देखकर किरात लोग सिंहों के जाने का मार्ग पहचान लेते हैं। इस वर्णन से हिमालय की प्राकृतिक विशेषताओं, सिंहों की शक्ति तथा कालिदास के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है।

काव्यगत सौन्दर्य

1.रस — अद्भुत रस

2.छन्द — वसन्ततिलका

3.अलंकार — अतिशयोक्ति, चित्र अलंकार, अनुप्रास

4.रीति — वैदर्भी

5.गुण — ओज एवं प्रसाद

6.शैली — वर्णनात्मक

यह श्लोक हिमालय के वन्य जीवन, सिंहों के पराक्रम तथा किरातों की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का प्रभावशाली चित्रण करता है। महाकवि कालिदास ने प्रकृति, लोकविश्वास और कल्पना का अद्भुत समन्वय कर इस वर्णन को अत्यन्त सजीव एवं काव्यमय बना दिया है।

श्लोक-*7*

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र, भूर्जत्वचः कुञ्जरबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम्।।

(कुमारसम्भवम्-1/7)

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्व श्लोकों में महाकवि कालिदास ने हिमालय की प्राकृतिक एवं वन्य सम्पदा का वर्णन किया है। इस श्लोक में वे हिमालय के भूर्जवृक्षों तथा रंगीन धातुओं का वर्णन करते हुए बताते हैं कि विद्याधरियाँ भूर्जपत्रों पर धातुरस से प्रेम-सन्देश लिखती हैं।*

अर्थ:- *जिस हिमालय में हाथियों के मदबिन्दुओं के समान लाल भूर्जपत्रों पर धातुओं के रस से अक्षर लिखे जाते हैं, वे भूर्जपत्र विद्याधरियों के प्रेम-पत्र लिखने के काम आते हैं।*

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास हिमालय की प्राकृतिक सम्पदा का अत्यन्त मनोहर चित्र प्रस्तुत करते हैं। हिमालय में भूर्जवृक्ष बहुतायत से पाए जाते हैं, जिनकी छाल (भोजपत्र) प्राचीन काल में लेखन के लिए प्रयुक्त होती थी। वहाँ की रंगीन धातुओं के रस से इन पत्रों पर अक्षर लिखे जाते थे। विद्याधरियों की सुन्दरियाँ इन्हीं भूर्जपत्रों पर अपने प्रियतमों के लिए प्रेम-पत्र लिखती थीं। इस प्रकार कवि ने हिमालय की प्राकृतिक सम्पदा, सांस्कृतिक परम्परा तथा प्रेम-भावना का अत्यन्त रमणीय चित्रण किया है।

काव्यगत सौन्दर्य

1.रस — शृङ्गार रस

2.छन्द — वसन्ततिलका

3.अलंकार — उपमा, अनुप्रास

4.रीति — वैदर्भी

5.गुण — माधुर्य एवं प्रसाद

6.शैली — चित्रात्मक एवं वर्णनात्मक

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि भोजपत्र (भूर्जत्वचा) प्राचीन भारत में लेखन-सामग्री के रूप में प्रयुक्त होते थे। कालिदास ने इस ऐतिहासिक तथ्य को काव्यात्मक कल्पना के साथ जोड़कर विद्याधरियों के प्रेम-सन्देशों का अत्यन्त मनोहर चित्र प्रस्तुत किया है।

श्लोक-8

वनेचराणां वनितासखानां, दरीगृहोत्सङ्गनिषक्तभासः।
भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः॥

(कुमारसम्भवम्-1/10)

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। पूर्व श्लोक में कवि ने हिमालय के सुगन्धित वनों का वर्णन किया। इस श्लोक में वे हिमालय की दिव्य औषधियों की विशेषता का वर्णन करते हैं, जो रात्रि में स्वयं प्रकाशमान होकर गुफाओं में रहने वाले वनवासी प्रेमी-युगलों के लिए दीपक का कार्य करती हैं।*

अर्थ:-*जिस हिमालय में गुफाओं में रहने वाले वनवासी अपनी प्रियाओं के साथ रात्रि में रहते हैं, वहाँ स्वयं प्रकाश देने वाली दिव्य औषधियाँ बिना तेल के ही उनके प्रेम-विहार के दीपक बन जाती हैं।*

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास इस श्लोक में हिमालय की दिव्य औषधियों का अद्भुत वर्णन करते हैं। हिमालय की गुफाओं में रहने वाले वनवासी अपनी प्रियाओं के साथ रात्रि में निवास करते हैं। उन गुफाओं में ऐसी दिव्य औषधियाँ उत्पन्न होती

हैं, जो स्वयं प्रकाशमान रहती हैं। उन्हें किसी तेल या दीपक की आवश्यकता नहीं होती। वे स्वाभाविक रूप से प्रकाश देकर प्रेम-विहार के लिए दीपक का कार्य करती हैं। इस प्रकार कवि ने हिमालय की अलौकिक प्राकृतिक सम्पदा और उसकी रमणीयता का अत्यन्त मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है।

काव्यगत सौन्दर्य

1.रस — शृङ्गार रस (संयोग) तथा अद्भुत रस

2.छन्द — वसन्ततिलका

3.अलंकार — रूपक (औषधियों को सुरतप्रदीप कहा गया है), अनुप्रास

4.रीति — वैदर्भी

5.गुण — माधुर्य एवं प्रसाद

6.शैली — वर्णनात्मक एवं चित्रात्मक

यह श्लोक हिमालय की दिव्य औषधि-सम्पदा, उसकी अलौकिक शोभा तथा महाकवि कालिदास की अद्भुत कल्पना-शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रकृति और मानवीय जीवन का ऐसा सुंदर समन्वय कालिदास की काव्यप्रतिभा को सिद्ध करता है।

श्लोक-8

लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरैः।
यस्यार्थयुक्तं गिरिराजशब्दं कुर्वन्ति वालव्यजनैश्चमर्यः।।

(कुमारसम्भवम्-1/13)

सन्दर्भ-प्रसंग:-प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। यहाँ कवि हिमालय के प्राकृतिक वैभव का वर्णन करते हुए बताते हैं कि हिमालय पर विचरण करने वाली चमरियाँ अपनी चन्द्र-किरणों के समान श्वेत पूँछों को इधर-उधर हिलाती हैं। ये पूँछें चामर के समान दिखाई देती हैं और हिमालय के 'गिरिराज' नाम को सार्थक करती हैं। मल्लिनाथाचार्य ने सञ्जीविनी टीका में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा है— "राजानो हि छत्रचामरादिचिह्निता इति भावः।" अर्थात् राजा छत्र, चामर आदि राजचिह्नों से युक्त होते हैं।

अर्थ:-जिस हिमालय पर चमरियाँ अपनी चन्द्र-किरणों के समान श्वेत पूँछों को इधर-उधर हिलाती हैं और उनकी फैलती हुई शोभा से हिमालय के 'गिरिराज' नाम को सार्थक करती हैं।

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास हिमालय के प्राकृतिक वैभव का अत्यन्त मनोहर चित्र प्रस्तुत करते हैं। हिमालय के प्रदेश में चमरियाँ विचरण करती हैं। उनकी पूँछें अत्यन्त कोमल, घनी तथा उज्ज्वल हैं। जब वे अपनी पूँछों को इधर-उधर हिलाती हैं, तब उनकी श्वेत आभा चारों ओर फैल जाती है।

कवि को उनकी यह उज्ज्वलता चन्द्रमा की किरणों के समान प्रतीत होती है। उनकी पूँछें चामर के समान दिखाई देती हैं। प्राचीन राजपरम्परा में चामर राजकीय वैभव एवं प्रभुता का प्रतीक था। अतः जिस प्रकार राजा के सामने चामर

डुलाए जाते हैं, उसी प्रकार हिमालय के ऊपर चमरियों की श्वेत पूँछें चामर के समान शोभायमान होकर उसके 'गिरिराज' अर्थात् पर्वतराज होने को सार्थक करती हैं। यही भाव मल्लिनाथाचार्य की सञ्जीविनी टीका में स्पष्ट रूप से मिलता है।

काव्यगत सौन्दर्य

(क) उपमा अलंकार — 'चन्द्रमरीचिगौरैः' में चमरियों की पूँछों की श्वेतता की तुलना चन्द्रमा की किरणों से की गई है। अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

(ख) काव्यलिङ्ग अलंकार — 'गिरिराजशब्दम् अर्थयुक्तम्'—हिमालय के 'गिरिराज' नाम की सार्थकता के लिए चमरियों के चामररूप पूँछों को हेतु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतः यहाँ काव्यलिङ्ग अलंकार माना गया है।

(ग) प्रकृति-चित्रण —चमरियों की चंचल गति, उनकी श्वेत पूँछें तथा हिमालय का भव्य परिवेश—इन सबके द्वारा कवि ने अत्यन्त सजीव प्रकृति-चित्र उपस्थित किया है।

(घ) चित्रात्मकता —चमरियों द्वारा अपनी पूँछों को इधर-उधर हिलाने का दृश्य पाठक के सम्मुख प्रत्यक्ष चित्र के समान उपस्थित हो जाता है।

(ङ) कल्पना-वैभव —चमरियों की पूँछों को चन्द्र-किरणों के समान श्वेत तथा चामर के समान मानना कालिदास की सूक्ष्म एवं सौन्दर्यमयी कल्पना का परिचायक है।

श्लोक-9

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किन्नराङ्गनानाम्।
दरीगृहद्वारविलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।।

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। यहाँ कवि हिमालय की रमणीयता का वर्णन करते हुए वहाँ निवास करने वाली किन्नरियों के सौन्दर्य का मनोहर चित्र प्रस्तुत करते हैं। हिमालय की गुफाओं के द्वारों पर संयोगवश ठहरे हुए मेघ किन्नरियों के शरीर को ढकने वाले पर्दे (तिरस्करिणी) के समान दिखाई देते हैं।

अर्थ:-जिस हिमालय में संयोगवश गुफाओं के द्वारों पर ठहरे हुए मेघ, वस्त्र के हट जाने से लज्जित हुई किन्नरियों के लिए पर्दे अथवा आड़ का कार्य करते हैं।

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास हिमालय के प्राकृतिक एवं रमणीय वातावरण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ अनेक किन्नरियाँ अपनी गुफाओं में निवास करती हैं। वे अत्यन्त सुन्दर हैं। कभी-कभी उनके वस्त्र संयोगवश हट जाते हैं और वे लज्जित हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में हिमालय की गुफाओं के द्वार पर ठहरे हुए मेघ उनके लिए पर्दे का काम करते हैं। कवि की कल्पना में ये मेघ केवल आकाश में तैरते हुए जलकण नहीं हैं, बल्कि वे लज्जित किन्नरियों की मर्यादा की रक्षा करने वाले पर्दे बन जाते हैं। इस प्रकार हिमालय का प्राकृतिक वातावरण किन्नरियों के सौन्दर्य, लज्जा और मेघों की स्थिति—इन तीनों के अद्भुत समन्वय से अत्यन्त मनोहर बन उठता है।

काव्यगत सौन्दर्य

(क) उत्प्रेक्षा का सौन्दर्य —मेघों को किन्नरियों की तिरस्करिणी अर्थात् पर्दा मानना कालिदास की कल्पनाशीलता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ख) मानवीकरण —मेघों को किन्नरियों की लज्जा ढकने वाले पर्दे के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने निर्जीव प्राकृतिक तत्त्व को मानवीय कार्य प्रदान किया है।

(ग) प्रकृति और मानव का समन्वय -मेघ,गुफा और किन्नरियों के सौन्दर्य को एक ही दृश्य में संयोजित किया गया है।

(घ) चित्रात्मकता —गुफा के द्वार पर ठहरे हुए मेघ और उनके पीछे लज्जित किन्नरियों का दृश्य अत्यन्त सजीव बन पड़ा है।

श्लोक-10

यज्ञाङ्गयोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च।
प्रजापतिः कल्पितयज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्।।17।।

(कुमारसम्भवम्-1/17)

सन्दर्भ-प्रसंग:-प्रस्तुत श्लोक महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग से उद्धृत है। हिमालय के महत्त्व एवं महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि प्रजापति ने हिमालय की दो विशेषताओं को देखकर उसे पर्वतराज का पद प्रदान किया—वह यज्ञोपयोगी पदार्थों का उद्गम-स्थान है तथा पृथ्वी को धारण करने में समर्थ है। मल्लिनाथाचार्य की सञ्जीविनी टीका में "यज्ञसाधनानां सोमलतादीनां योनिः प्रभवः" कहकर 'यज्ञाङ्गयोनित्व' का अर्थ स्पष्ट किया गया है तथा इसके प्रमाण में विष्णुपुराण का वचन भी उद्धृत है—"यज्ञाङ्गार्थं मया सृष्टो हिमवानचलेश्वरः।"

अर्थ:-प्रजापति ने हिमालय के यज्ञोपयोगी पदार्थों के उद्गम-स्थान होने तथा पृथ्वी को धारण करने में समर्थ उसके बल को देखकर, उसके लिए यज्ञभाग निर्धारित करके स्वयं उसे पर्वतों का अधिपति बना दिया।

हिन्दी व्याख्या

महाकवि कालिदास इस श्लोक में हिमालय के 'शैलाधिपति' अर्थात् पर्वतराज पद की सार्थकता प्रतिपादित करते हैं। हिमालय केवल अपनी ऊँचाई और प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही श्रेष्ठ नहीं है, बल्कि उसमें लोक-कल्याण से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण गुण भी विद्यमान हैं।

प्रजापति ने देखा कि हिमालय यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली आवश्यक वस्तुओं का उद्गम-स्थान है। मल्लिनाथाचार्य ने 'यज्ञाङ्गयोनित्व' का अर्थ सोमलता आदि यज्ञसाधनों का प्रभव-स्थान किया है। साथ ही हिमालय में इतनी सामर्थ्य है कि वह पृथ्वी को धारण कर सकता है। इन दोनों विशिष्ट गुणों को देखकर प्रजापति ने हिमालय के लिए यज्ञ में भाग निर्धारित किया और उसे स्वयं पर्वतों का अधिपति बना दिया। इस प्रकार हिमालय का पर्वतराज-पद केवल नाममात्र का नहीं, बल्कि उसके गुण, सामर्थ्य और उपयोगिता पर आधारित है।

काव्यगत सौन्दर्य

(क) अर्थगौरव *—अत्यल्प शब्दों में हिमालय की धार्मिक, भौतिक और सांस्कृतिक महत्ता का व्यापक निरूपण किया गया है।*

(ख) अतिशयोक्ति *— 'धरित्रीधरणक्षमम्' पद हिमालय की असाधारण विशालता और सामर्थ्य को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है।*

(ग) प्रकृति एवं संस्कृति का समन्वय *—हिमालय के प्राकृतिक स्वरूप को यज्ञ जैसी वैदिक सांस्कृतिक परम्परा से जोड़कर कवि ने भारतीय जीवन-दृष्टि का सुन्दर समन्वय किया है।*

(घ) कारण-कार्य-सम्बन्ध *—हिमालय के गुणों को देखकर प्रजापति द्वारा उसे शैलाधिपत्य प्रदान करना वर्णन को तार्किक एवं प्रभावपूर्ण बनाता है।*

(ङ) पदवैचित्र्य *— 'यज्ञाङ्गयोनित्वम्', 'धरित्रीधरणक्षमम्', 'कल्पितयज्ञभागम्', 'शैलाधिपत्यम्' जैसे समासबद्ध पदों में कालिदास की संक्षिप्त एवं गम्भीर अभिव्यक्ति दिखाई देती है।*

महत्त्वपूर्ण-प्रश्न

प्रश्न-1. कुमारसंभवम् महाकाव्य का प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट कीजिए

(क) मुख्य प्रतिपाद्य विषय:- *महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय भगवान् शिव और पार्वती के दिव्य प्रेम, तपस्या, विवाह तथा उनके पुत्र कुमार (कार्तिकेय) के जन्म की कथा है। इसके माध्यम से कवि ने धर्म की स्थापना, लोककल्याण तथा अधर्म पर धर्म की विजय के आदर्श को अभिव्यक्त किया है। तारकासुर के अत्याचार से देवता पीड़ित थे और उसका वध केवल शिव-पुत्र द्वारा ही सम्भव था। अतः देवताओं के प्रयत्न से शिव और पार्वती का मिलन तथा कुमार का जन्म सम्पूर्ण कथा का मूल उद्देश्य बनता है।*

महाकाव्य में हिमालय को देवस्वरूप, उदात्त एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। पार्वती के रूप में कालिदास ने नारी के सौन्दर्य, शील, तप, त्याग, श्रद्धा, दृढ़ संकल्प एवं समर्पण का आदर्श प्रस्तुत किया है, जबकि शिव वैराग्य, तपस्या, ज्ञान एवं आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक हैं। दोनों का मिलन केवल प्रेमी-प्रेमिका का मिलन न होकर पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति तथा तप और प्रेम के सृजनात्मक समन्वय का प्रतीक है।

महाकाव्य में कामदेव का प्रसंग, पार्वती की कठोर तपस्या, शिव की परीक्षा, शिव-पार्वती विवाह तथा कुमार के जन्म के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि सच्ची सिद्धि तप, आत्मसंयम, निष्ठा और समर्पण से प्राप्त होती है। कुमार का जन्म अन्ततः देवताओं के कल्याण तथा तारकासुर-वध का साधन बनता है, जिससे धर्म की अधर्म पर विजय और लोकमंगल की स्थापना का आदर्श प्रतिपादित होता है।

इस प्रकार 'कुमारसम्भवम्' केवल शिव-पार्वती की प्रेमकथा नहीं, बल्कि प्रकृति और पुरुष, सौन्दर्य और आध्यात्मिकता, प्रेम और तपस्या तथा व्यक्तिगत साधना और लोककल्याण के समन्वय का महाकाव्य है। कालिदास ने प्रकृति-चित्रण, श्रृंगार, वीरता, तपस्या और मानवीय भावनाओं के माध्यम से भारतीय जीवन-दर्शन एवं सांस्कृतिक आदर्शों को अत्यन्त कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

(ख) महाकाव्य का प्रतिपाद्य विषयक चित्रण:- *महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ महाकवियों में अग्रगण्य हैं। उनकी काव्य-प्रतिभा में प्रकृति, प्रेम,तप,त्याग,सौन्दर्य एवं आध्यात्मिकता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। 'कुमारसम्भवम् 'उनका प्रसिद्ध महाकाव्य है,जिसका मुख्य विषय भगवान् शिव और पार्वती के विवाह तथा उनके पुत्र कुमार (कार्तिकेय) के जन्म की कथा है। कुमार का जन्म देवताओं के कल्याण तथा तारकासुर-वध के लिए होता है,जिसका चित्रण निम्नवत् है-*

I. देवताओं के संकट का निरूपण: - *महाकाव्य की कथा का मूल उद्देश्य देवताओं को तारकासुर के अत्याचार से मुक्त करना है। तारकासुर को वरदान प्राप्त था कि उसका वध केवल शिव-पुत्र द्वारा ही सम्भव होगा। परन्तु भगवान शिव सती के वियोग के कारण तपस्या में लीन थे। अतः देवताओं के सामने शिव-पार्वती के विवाह की आवश्यकता उत्पन्न होती है।*

II. हिमालय का भव्य चित्रण: -*महाकाव्य के आरम्भ में कालिदास ने हिमालय का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है—अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। हिमालय को केवल पर्वत न मानकर देवतात्मा एवं नगाधिराज के रूप में चित्रित किया गया है। उसके माध्यम से कवि ने भारतीय प्रकृति, संस्कृति और आध्यात्मिक चेतना का भव्य स्वरूप प्रस्तुत किया है।*

III. *पार्वती का चरित्र-चित्रण: -पार्वती इस महाकाव्य की प्रमुख नायिका हैं। वे रूप, तप, त्याग, प्रेम, श्रद्धा और दृढ़ संकल्प की प्रतिमूर्ति हैं। वे शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करती हैं। उनका प्रेम केवल शारीरिक आकर्षण पर आधारित नहीं, बल्कि आध्यात्मिक समर्पण एवं तपस्या से परिपूर्ण है।*

IV. शिव का चरित्र: - *भगवान् शिव को वैराग्य, तपस्या, ज्ञान एवं आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। वे सांसारिक आकर्षण से परे हैं। पार्वती की कठोर तपस्या और निष्कलुष प्रेम अंततः उनके हृदय को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार शिव और पार्वती का मिलन तप और प्रेम, वैराग्य और गृहस्थ-धर्म के समन्वय का प्रतीक बन जाता है।*

V. कामदेव का प्रसंग: - *देवताओं के आग्रह पर कामदेव शिव की तपस्या भंग करने का प्रयास करता है। शिव अपने तीसरे नेत्र से कामदेव को भस्म कर देते हैं। यह प्रसंग इन्द्रिय-विजय एवं तप की शक्ति को व्यक्त करता है। साथ ही यह दर्शाता है कि वास्तविक प्रेम केवल कामना से नहीं, बल्कि तप, त्याग और आत्मसंयम से प्राप्त होता है।*

VI. पार्वती की तपस्या: - *कामदेव के भस्म होने के बाद भी पार्वती अपने संकल्प से विचलित नहीं होतीं। वे कठोर तपस्या करती हैं। उनकी तपस्या के माध्यम से कालिदास ने नारी की इच्छाशक्ति, आत्मबल एवं दृढ़ संकल्प का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है।*

VII. शिव-पार्वती विवाह: - *पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव उन्हें स्वीकार करते हैं। दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। यह विवाह केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं, बल्कि—शिव = पुरुष/चैतन्य और पार्वती = शक्ति/प्रकृति के सृजनात्मक समन्वय का प्रतीक भी माना जा सकता है।*

VIII. कुमार का जन्म एवं तारकासुर-वध: - शिव और पार्वती के संयोग से कुमार (कार्तिकेय) का जन्म होता है। कुमार देवताओं के सेनापति बनकर तारकासुर का वध करते हैं और देवताओं को उसके अत्याचार से मुक्ति दिलाते हैं। अतः महाकाव्य का व्यापक उद्देश्य अधर्म पर धर्म की विजय तथा लोककल्याण की स्थापना है।

IX. महाकाव्य का व्यापक प्रतिपाद्य: -'कुमारसम्भवम्' केवल शिव-पार्वती की प्रेमकथा नहीं है। इसमें अनेक जीवन-मूल्यों का समन्वय है—

1.तप और संयम:- पार्वती की तपस्या तथा शिव का वैराग्य।

2.प्रेम और समर्पण:-पार्वती का शिव के प्रति निष्कलुष प्रेम।

3.प्रकृति और पुरुष का समन्वय: -शिव-पार्वती का मिलन सृष्टि के संतुलन का प्रतीक है।

4.धर्म और लोककल्याण: - कुमार का जन्म देवताओं एवं लोक की रक्षा के लिए होता है।

5.अधर्म पर धर्म की विजय: - कुमार द्वारा तारकासुर का वध।

X. काव्यगत दृष्टि से प्रतिपाद्य: - कालिदास ने कथा के माध्यम से प्रकृति और मानव-जीवन का अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। हिमालय, ऋतुएँ, वन, पुष्प, पशु-पक्षी, नदियाँ आदि उनके काव्य में मानवीय भावों के सहचर बन जाते हैं। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है, किन्तु वीर, करुण, अद्भुत एवं शान्त रस का भी प्रभावपूर्ण समावेश है।

उपसंहार

अतः 'कुमारसम्भवम्' का प्रतिपाद्य विषय शिव और पार्वती के दिव्य प्रेम, तपस्या, विवाह तथा कुमार के जन्म की कथा के माध्यम से लोककल्याण और धर्म की स्थापना है। कालिदास ने इसमें प्रकृति और पुरुष, तप और प्रेम, वैराग्य और गृहस्थ-धर्म तथा सौन्दर्य और आध्यात्मिकता का अद्भुत समन्वय किया है। इसीलिए 'कुमारसम्भवम्' केवल पौराणिक आख्यान न होकर भारतीय जीवन-दर्शन, प्रकृति-सौन्दर्य और मानवीय मूल्यों का अनुपम काव्यात्मक रूपान्तरण है।

प्रश्न-2. सारांश

(क.) 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग का सारांश:- महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग का प्रारम्भ उत्तर दिशा में स्थित देवस्वरूप हिमालय के भव्य वर्णन से होता है। कवि हिमालय को 'नगाधिराज' तथा पृथ्वी के मानदण्ड के समान बताते हुए उसकी विशालता, ऊँचाई, रत्न-सम्पदा, औषधियों, विविध धातुओं, हिमाच्छादित शिखरों, गुफाओं, वनस्पतियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का अत्यन्त मनोरम चित्रण करते हैं। हिमालय सिद्धों, विद्याधरों, किन्नरों तथा अप्सराओं का निवास-स्थान है। उसके शिखरों, वनों और गुफाओं में विविध प्रकार की अलौकिक एवं प्राकृतिक शोभा दिखाई देती है।

हिमालय का विवाह मेना से हुआ था। उनके यहाँ एक दिव्य एवं अत्यन्त सुन्दरी कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम पार्वती रखा गया। पार्वती का बाल्यकाल हिमालय की रमणीय प्राकृतिक परिस्थितियों में व्यतीत होता है। कालिदास ने उनके रूप, यौवन, शील, विनय, सौम्यता तथा सद्गुणों का अत्यन्त कलात्मक वर्णन किया है। युवावस्था में पहुँचने पर पार्वती का मन भगवान् शिव की ओर आकृष्ट होता है। उस समय शिव हिमालय पर कठोर तपस्या में लीन थे। पार्वती श्रद्धा एवं अनुरागपूर्वक उनकी सेवा करने लगती हैं।

इसी समय देवतागण तारकासुर के अत्याचार से पीड़ित थे। तारकासुर को वर प्राप्त था कि उसका वध केवल शिव के पुत्र द्वारा ही सम्भव होगा। अतः देवताओं के लिए शिव और पार्वती का विवाह अत्यन्त आवश्यक था। इस प्रकार प्रथम सर्ग में हिमालय के विराट प्राकृतिक वैभव के साथ पार्वती के जन्म, उनके सौन्दर्य एवं गुणों के विकास तथा शिव के प्रति उनके अनुराग का वर्णन करते हुए आगे होने वाले शिव-पार्वती विवाह और कुमार के जन्म की पृष्ठभूमि तैयार की गई है। प्रथम सर्ग कालिदास की प्रकृति-चित्रण,सौन्दर्य-वर्णन,कल्पना-वैभव, भावाभिव्यक्ति तथा पौराणिक आख्यान को काव्यात्मक रूप प्रदान करने की अद्भुत क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ख.) महाकाव्य के प्रथम सर्ग के सारांश का चित्रण:- महाकवि कालिदास विरचित 'कुमारसम्भवम्' संस्कृत साहित्य का प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसके प्रथम सर्ग में मुख्यतः हिमालय के वैभव, उसकी प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक महिमा, पार्वती के जन्म, बाल्यकाल, यौवन तथा भगवान् शिव के प्रति उनके अनुराग का अत्यन्त मनोहर वर्णन हुआ है-

1.**हिमालय का भव्य वर्णन**: -प्रथम सर्ग का आरम्भ कालिदास हिमालय के विराट स्वरूप के वर्णन से करते हैं—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥

अर्थात् उत्तर दिशा में देवस्वरूप हिमालय नामक पर्वतराज स्थित है, जो पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रों को स्पर्श करता हुआ पृथ्वी के मानदण्ड के समान प्रतीत होता है।

कवि हिमालय की रत्न-सम्पदा, औषधियों, रंग-बिरंगी धातुओं, हिमाच्छादित शिखरों, गुफाओं, वनस्पतियों तथा झरनों का अत्यन्त सजीव चित्रण करते हैं। हिमालय सिद्धों, विद्याधरों और किन्नरों का निवास-स्थान भी है। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य में अलौकिकता का समावेश दिखाई देता है।

2. हिमालय की महत्ता: -कालिदास हिमालय को केवल एक पर्वत के रूप में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसे देवताओं की आत्मा से युक्त, उदार, महान् एवं लोकहितकारी सत्ता के रूप में चित्रित करते हैं। उसके आश्रय में छोटे से छोटे प्राणी को भी सुरक्षा प्राप्त होती है। इस प्रकार हिमालय भारतीय संस्कृति में प्रकृति, पवित्रता और आध्यात्मिकता का प्रतीक बन जाता है।

3. हिमालय और मेना: -हिमालय का विवाह मेना से हुआ था। मेना अत्यन्त रूपवती एवं गुणवती थीं। उनके संयोग से एक दिव्य कन्या का जन्म हुआ, जिसका नाम पार्वती रखा गया।

4. पार्वती का बाल्यकाल एवं विकास: -पार्वती बचपन से ही असाधारण सौन्दर्य, विनय, शील एवं सद्गुणों से सम्पन्न थीं। उनका बाल्यकाल हिमालय की सुरम्य प्राकृतिक परिस्थितियों में बीतता है। धीरे-धीरे वे यौवनावस्था में प्रवेश करती हैं और उनका सौन्दर्य निरन्तर विकसित होता है। कालिदास ने पार्वती के रूप-सौन्दर्य के साथ उनके कोमल स्वभाव, शील और संस्कार का भी सुन्दर चित्रण किया है।

5. शिव के प्रति अनुराग: - भगवान् शिव हिमालय पर तपस्या में लीन थे। पार्वती के मन में शिव के प्रति श्रद्धा और अनुराग उत्पन्न होता है। वे शिव की सेवा करने लगती हैं। उनका यह प्रेम केवल बाह्य सौन्दर्य पर आधारित नहीं, बल्कि श्रद्धा, समर्पण और तपस्या से युक्त है।

6. देवताओं के संकट की पृष्ठभूमि: - *उधर तारकासुर के अत्याचार से देवता अत्यन्त पीड़ित थे। उसे ऐसा वर प्राप्त था कि उसका वध केवल शिव के पुत्र द्वारा ही हो सकता था। इसलिए देवताओं के लिए शिव और पार्वती का विवाह आवश्यक था। यही भविष्य में कुमार (कार्तिकेय) के जन्म की पृष्ठभूमि बनती है।*

7. प्रथम सर्ग का महत्त्व: - *प्रथम सर्ग में कालिदास ने कथा को आगे बढ़ाने के साथ-साथ—हिमालय की प्राकृतिक भव्यता, पार्वती की दिव्यता एवं सौन्दर्य, उनके शील और गुण, शिव के प्रति अनुराग तथा आगामी शिव-पार्वती विवाह और कुमार-जन्म की आधारभूमि तैयार की है।*

उपसंहार

इस प्रकार कुमारसम्भवम् के प्रथम सर्ग में हिमालय के विराट स्वरूप से आरम्भ होकर पार्वती के जन्म, उनके सौन्दर्य एवं गुणों के विकास और शिव के प्रति उनके अनुराग तक की कथा प्रस्तुत की गई है। कालिदास ने प्रकृति और नारी-सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय करते हुए हिमालय को कथा का भव्य पृष्ठभूमि-पट बनाया है।

प्रथम सर्ग की मूल विशेषता यह है कि इसमें आगे होने वाले शिव-पार्वती-विवाह तथा कुमार के जन्म की सुदृढ़ भूमिका निर्मित होती है। साथ ही इसमें कालिदास की प्रकृति-चित्रण,सौन्दर्य-वर्णन,कल्पना-वैभव और भावाभिव्यक्ति की अद्वितीय प्रतिभा पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है।

प्रश्न-3. 'कुमारसम्भवम्' के आलोक में महाकवि कालिदास की काव्यकला, काव्य-सौष्ठव एवं प्रकृति-चित्रण

भूमिका

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के अप्रतिम कवि तथा 'कविकुलगुरु' के रूप में विख्यात हैं। उनके काव्य में प्रकृति और मानव-जीवन, भाव और कल्पना, शब्द और अर्थ तथा सौन्दर्य और आध्यात्मिकता का अद्भुत समन्वय मिलता है। 'कुमारसम्भवम्' उनकी काव्यप्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस महाकाव्य के आलोक में उनकी काव्यकला, काव्य-सौष्ठव एवं प्रकृति-चित्रण की विशिष्टताएँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं-

कालिदास की काव्यकला

कालिदास की काव्यकला की प्रमुख विशेषता भाव और कल्पना का स्वाभाविक समन्वय है। उन्होंने पौराणिक कथा को केवल घटनाओं के रूप में प्रस्तुत न करके उसमें मानवीय संवेदनाओं का समावेश किया है। शिव का वैराग्य, पार्वती का अनुराग, उनकी तपस्या, कामदेव का दहन तथा शिव-पार्वती का मिलन—इन सभी प्रसंगों में कवि ने मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता का परिचय दिया है।

***(क) चरित्र-चित्रण**: - कुमारसम्भवम् में शिव, पार्वती, हिमालय, मेना तथा कामदेव आदि पात्रों का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण हुआ है। पार्वती के चरित्र में रूप-सौन्दर्य, शील, श्रद्धा, तपस्या और दृढ़ संकल्प का अद्भुत समन्वय है। वे केवल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति नहीं, बल्कि आत्मबल और निष्ठा की प्रतीक हैं। शिव का चरित्र वैराग्य, तप, ज्ञान और आध्यात्मिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।*

***(ख) रस-योजना**: - महाकाव्य में शृङ्गार रस की प्रधानता है। शिव-पार्वती के प्रेम में संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों पक्षों का प्रभाव मिलता है। इसके साथ अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र एवं शान्त रसों का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है।*

पार्वती की तपस्या में शान्त भाव, कामदेव-दहन में रौद्र एवं अद्भुत भाव तथा कुमार के जन्म और तारकासुर-वध की पृष्ठभूमि में वीर भाव दिखाई देता है।

(ग) अलंकार-योजना: - कालिदास ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारों का अत्यन्त स्वाभाविक प्रयोग किया है। उनकी उपमा-योजना इतनी प्रसिद्ध है कि संस्कृत साहित्य में कहा गया है— उपमा कालिदासस्य।

प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में हिमालय के सम्बन्ध में— "स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः", कहकर पृथ्वी के मानदण्ड के साथ की गई उपमा उसकी विशालता एवं स्थिरता को अत्यन्त प्रभावशाली बनाती है।

(घ) भावाभिव्यक्ति एवं मनोवैज्ञानिकता: - कालिदास की विशेषता यह है कि वे पात्रों के बाह्य व्यवहार के साथ उनके अन्तर्मन की सूक्ष्म भावनाओं को भी व्यक्त करते हैं। पार्वती के मन में शिव के प्रति उत्पन्न प्रेम, उनकी लज्जा, आशा, तपस्या और दृढ़ता का क्रमिक विकास अत्यन्त स्वाभाविक है।

कालिदास का काव्य-सौष्ठव

कालिदास के काव्य का सौष्ठव मुख्यतः भाषा, शैली, शब्द-चयन, अर्थगाम्भीर्य और भाव-सौन्दर्य में दिखाई देता है

(क) भाषा की परिष्कृति: - उनकी भाषा संस्कृत की परिष्कृत, मधुर, ललित, प्रसादपूर्ण एवं अर्थगर्भित भाषा है। वे कठिन भावों को भी स्वाभाविक और प्रभावशाली शब्दावली में अभिव्यक्त करते हैं।

(ख) शब्द और अर्थ का सामञ्जस्य: - कालिदास के काव्य में शब्द और अर्थ का अद्भुत सामञ्जस्य है। शब्द न तो केवल अलंकरण हैं और न अर्थ शब्दों से पृथक्। दोनों मिलकर भाव को पूर्णता प्रदान करते हैं।

(ग) शैलीगत माधुर्य: -उनकी शैली में माधुर्य, प्रसाद, लालित्य एवं गाम्भीर्य का संतुलित समन्वय है। उनकी अभिव्यक्ति में सहजता है, जिसके कारण गम्भीर भाव भी पाठक के हृदय तक सरलता से पहुँचते हैं।

(घ) कल्पना-वैभव: -कालिदास की कल्पना मौलिक, सूक्ष्म और भावानुकूल है। वे सामान्य प्राकृतिक दृश्यों को भी ऐसी कलात्मक कल्पना प्रदान करते हैं कि वे असाधारण एवं अलौकिक प्रतीत होने लगते हैं।

कालिदास का प्रकृति-चित्रण

कालिदास संस्कृत साहित्य के महानतम प्रकृति-चित्रकारों में अग्रणी हैं। कुमारसम्भवम् के प्रथम सर्ग में उनका प्रकृति-चित्रण विशेष रूप से उत्कृष्ट है। महाकाव्य का आरम्भ ही हिमालय के भव्य वर्णन से होता है— अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः। कवि हिमालय को केवल निर्जीव पर्वत के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे 'देवतात्मा', चेतन एवं महान् सत्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

(क) हिमालय का भव्य चित्रण: - प्रथम सर्ग में हिमालय के—विशाल पर्वत-शिखरों, रत्नों एवं धातुओं, दिव्य औषधियों, गुफाओं, वनों, मेघों, हिम, पशु-पक्षियों, सिद्धों, विद्याधरों एवं किन्नरों का अत्यन्त सजीव चित्रण हुआ है।

(ख) प्रकृति का मानवीकरण: - कालिदास प्रकृति को मानवीय भावों से युक्त कर देते हैं। उदाहरणतः हिमालय की गुफाओं में सुरक्षित अन्धकार को दिन से भयभीत प्राणी के रूप में प्रस्तुत करना उनकी मानवीकरण-प्रधान कल्पना का उत्कृष्ट उदाहरण है।

*(ग) **प्रकृति और संगीत**: -हिमालय की गुफाओं से निकलने वाली वायु जब बाँसों के छिद्रों से होकर गुजरती है, तब उत्पन्न ध्वनि को कवि किन्नरों के संगीत में तान देने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार प्रकृति स्वयं एक दिव्य संगीत-सभा बन जाती है।*

*(घ) **प्रकृति और मानव-जीवन**: -कालिदास के यहाँ प्रकृति केवल बाहरी पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि वह मानव-जीवन की सहचरी और सहभाविनी है। पार्वती का जीवन हिमालय की प्रकृति से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। उनके सौन्दर्य एवं भावनाओं के चित्रण में भी प्रकृति की उपमाएँ और प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं।*

प्रकृति-चित्रण की प्रमुख विशेषताएँ

कालिदास के प्रकृति-वर्णन में निम्न विशेषताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

*(1) **सूक्ष्म निरीक्षण**: - प्रकृति की छोटी-से-छोटी वस्तु एवं घटना का सूक्ष्म अवलोकन।*

*(2) **सजीवता: -** निर्जीव प्रकृति में भी चेतना एवं जीवन का अनुभव कराना।*

*(3) **मानवीकरण**: -प्रकृति को मानवीय भावनाओं एवं क्रियाओं से युक्त करना।*

*(4) **भावानुकूलता**: -पात्रों की मनोदशा के अनुरूप प्रकृति का चित्रण करना।*

*(5) **सौन्दर्य-बोध**: -प्राकृतिक दृश्यों में सौन्दर्य की सूक्ष्मतम अनुभूति को अभिव्यक्त करना।*

*(6) **चित्रात्मकता**: -शब्दों के माध्यम से ऐसा दृश्य उपस्थित करना कि पाठक उसे प्रत्यक्ष अनुभव कर सके।*

*(7) **गतिशीलता**: -कालिदास की प्रकृति स्थिर नहीं है; मेघ चलते हैं, वायु बहती है, वृक्षों से रस निकलता है, पक्षी एवं पशु विचरण करते हैं और पर्वतीय वातावरण निरन्तर परिवर्तनशील दिखाई देता है।*

प्रकृति और पुरुष का समन्वय

कुमारसम्भवम् का एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक पक्ष शिव और पार्वती का मिलन है। शिव को पुरुष तथा पार्वती को शक्ति अथवा प्रकृति का प्रतीक माना जा सकता है। दोनों का मिलन केवल व्यक्तिगत प्रेम की परिणति नहीं, बल्कि सृजनात्मक शक्ति के जागरण का प्रतीक है। इस दृष्टि से कुमारसम्भवम् में प्रकृति का वर्णन कथा से पृथक् नहीं है। हिमालय पार्वती का पिता है, प्रकृति पार्वती के व्यक्तित्व का विस्तार है और शिव-शक्ति का मिलन सृष्टि की गतिशीलता का प्रतीक बन जाता है।

प्रकृति और मानव-भावना का तादात्म्य

कालिदास की प्रकृति मानवीय भावनाओं के साथ एकाकार हो जाती है। प्रेम, विरह, तप, उत्साह और आनन्द—प्रत्येक भाव की अपनी प्रकृति है। इसलिए उनके प्रकृति-वर्णन में केवल बाह्य सौन्दर्य नहीं, बल्कि भावात्मक एवं मनोवैज्ञानिक सौन्दर्य भी दिखाई देता है। यही कारण है कि कालिदास के यहाँ प्रकृति कभी प्रेम की सहचरी, कभी तपस्या की पृष्ठभूमि और कभी मानवीय भावों की अभिव्यक्तिकारिणी बन जाती है।

सांस्कृतिक एवं दार्शनिक दृष्टि

कुमारसम्भवम् में प्रकृति भारतीय सांस्कृतिक चेतना से भी जुड़ी हुई है। हिमालय देवताओं, सिद्धों एवं ऋषियों की भूमि है। शिव और पार्वती का मिलन शिव और शक्ति के दार्शनिक सिद्धान्त को मूर्त रूप देता है। कुमार का जन्म लोककल्याण के लिए होता है। इस प्रकार काव्य में व्यक्तिगत प्रेम से लोकमंगल तक की यात्रा दिखाई देती है।

निष्कर्ष

'कुमारसम्भवम्' के आलोक में महाकवि कालिदास की काव्यकला का मूल स्वर सौन्दर्य, संवेदना, कल्पना और संतुलन है। उनकी भाषा में माधुर्य एवं प्रसाद, अर्थ में गाम्भीर्य, अलंकारों में स्वाभाविकता, रसों में समन्वय, चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता तथा प्रकृति-वर्णन में जीवन्तता है।

विशेषतः हिमालय के वर्णन में उनकी प्रकृति-दृष्टि, कल्पना-वैभव और चित्रात्मक अभिव्यक्ति चरम उत्कर्ष पर दिखाई देती है। उन्होंने प्रकृति को मात्र दृश्य-सौन्दर्य न मानकर उसे मानव-जीवन, भावनाओं और आध्यात्मिक चेतना की सहचरी बनाया है। इसीलिए कुमारसम्भवम् केवल पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि प्रकृति, प्रेम, तप, सौन्दर्य और लोकमंगल के अद्भुत समन्वय का महाकाव्य है। इसी समन्वित काव्य-दृष्टि के कारण कालिदास संस्कृत साहित्य में 'कविकुलगुरु' के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

ग. नीतिशतकम् महाकाव्य: श्लोक 1 से 25

(महत्त्वपूर्ण पद्यों की व्याख्या)

श्लोक -1

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे।।

(नीतिशतकम्-1)

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' के मङ्गलाचरण से उद्धृत है। महाकवि भर्तृहरि संस्कृत साहित्य के अप्रतिम नीतिकार, दार्शनिक एवं महाकवि हैं। उनके शतकत्रय—नीतिशतकम्, शृङ्गारशतकम् तथा वैराग्यशतकम्—भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। नीतिशतकम् के प्रारम्भ में कवि भारतीय काव्य-परम्परा का अनुसरण करते हुए सर्वप्रथम परमब्रह्म की स्तुति करते हैं। इस मङ्गलाचरण में कवि उस परमात्मतत्त्व का वन्दन करता है जो देश, काल एवं समस्त उपाधियों से रहित, अनन्त, शुद्धचैतन्यस्वरूप, केवल आत्मानुभूति द्वारा ज्ञेय, स्वयंप्रकाश तथा परमशान्त है। कवि का अभिप्राय यह है कि समस्त नीति, धर्म, सदाचार एवं विवेक का मूलाधार परमब्रह्म ही है; अतः उसी की वन्दना से ग्रन्थ का शुभारम्भ किया गया है।

अर्थ :- दिशा, काल तथा अन्य समस्त सीमाओं से रहित, अनन्त, शुद्ध चैतन्यस्वरूप, केवल आत्मानुभूति द्वारा ही ज्ञेय, परमशान्त तथा स्वयंप्रकाश ब्रह्मरूप तेज को मेरा नमस्कार है।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने नीतिशतकम् का शुभारम्भ परमब्रह्म की वन्दना से किया है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक शुभ कार्य का आरम्भ ईश्वर-स्मरण से करना मंगलकारी माना गया है। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए कवि उस परमसत्ता को प्रणाम करता है जो सम्पूर्ण सृष्टि का कारण, समस्त ज्ञान का मूल तथा नीति एवं धर्म का परम आधार है। कवि के अनुसार परमब्रह्म **'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न'** है, अर्थात् वह दिशा, काल, स्थान अथवा किसी भी प्रकार की सीमा में आबद्ध नहीं है। वह सर्वत्र विद्यमान, सर्वकालिक एवं सर्वान्तर्यामी सत्ता है। उसका अस्तित्व किसी विशेष देश, काल अथवा वस्तु पर आश्रित नहीं है। वह समस्त जगत् का आधार होते हुए भी उससे परे एवं स्वतन्त्र है।

'अनन्तचिन्मात्रमूर्ति' *पद से ब्रह्म के शुद्ध चैतन्यस्वरूप का निरूपण हुआ है। वह जड़ पदार्थ नहीं, अपितु चेतना का अखण्ड एवं अनन्त स्रोत है। उसमें न उत्पत्ति है, न विनाश, न परिवर्तन और न ही किसी प्रकार का विकार। वह नित्य, शाश्वत एवं अविनाशी सत्ता है।*

'स्वानुभूत्येकमानाय' *पद अत्यन्त दार्शनिक महत्त्व का है। इसका तात्पर्य है कि परमब्रह्म का यथार्थ ज्ञान इन्द्रियों, तर्क, अनुमान अथवा बाह्य प्रमाणों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। उसका साक्षात्कार केवल आत्मानुभूति अथवा आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से ही सम्भव है। यही अद्वैत वेदान्त का मूल सिद्धान्त है कि ब्रह्म अपरोक्षानुभूति का विषय है।*

अन्तिम चरण में कवि ब्रह्म को ***'शान्ताय तेजसे'*** *कहकर प्रणाम करता है। यहाँ* ***'शान्त'*** *शब्द ब्रह्म की निर्विकार, निरहंकार, निःस्पृह तथा परम आनन्दमयी स्थिति का द्योतक है। 'तेजस्' शब्द उसके स्वयंप्रकाश स्वरूप का बोध कराता है। उपनिषदों के अनुसार सूर्य, चन्द्र, अग्नि तथा सम्पूर्ण विश्व उसी परमतेज के कारण प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार कवि अत्यन्त संक्षिप्त शब्दों में ब्रह्म की सर्वव्यापकता, अनन्तता, चैतन्यस्वरूपता, आत्मानुभूतिगम्यता तथा स्वयंप्रकाशता का अत्यन्त प्रभावशाली एवं दार्शनिक निरूपण करता है।*

काव्यगत सौन्दर्य

1.इस श्लोक में शान्तरस की प्रधानता है, क्योंकि सम्पूर्ण वर्णन परमशान्त ब्रह्म की स्तुति पर आधारित है।

2.एक ही उपास्य(परमब्रह्म)के अनेक विशेषणों के प्रयोग से परिकर अलंकार का सुन्दर उदाहरण उपस्थित हुआ है।

3.समास-बहुल शैली के कारण श्लोक में अर्थगाम्भीर्य,दार्शनिकता एवं वैचारिक गरिमा का उत्कर्ष हुआ है।

4.भाषा संस्कृत की परिमार्जित, प्रौढ़, प्रसादगुणयुक्त एवं दार्शनिक अभिव्यक्ति से सम्पन्न है।

5.अल्प शब्दों में ब्रह्म के निर्गुण,निराकार,अनन्त,स्वयंप्रकाश एवं चैतन्यस्वरूप का अत्यन्त प्रभावशाली निरूपण हुआ है।

6.श्लोक में प्रसाद, माधुर्य एवं ओज—तीनों काव्यगुणों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

7.दार्शनिक चिन्तन एवं काव्यात्मक अभिव्यक्ति का अद्भुत समन्वय इस श्लोक की विशिष्टता है।

श्लोक -2

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्।।

(नीतिशतकम्-2)

सन्दर्भ- प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। मङ्गलाचरण में परमब्रह्म की वन्दना करने के उपरान्त कवि इस श्लोक में सुभाषितों (श्रेष्ठ एवं हितकारी वचनों) की उपेक्षा के कारणों का मार्मिक चित्रण करते हैं। कवि अनुभव करता है कि संसार में उत्तम विचारों का सम्मान करने वाले व्यक्ति अत्यन्त दुर्लभ हैं। जो विद्वान् हैं, वे ईर्ष्या से ग्रस्त हैं; जो सामर्थ्यवान् हैं, वे अहंकार से दूषित हैं; और सामान्य लोग अज्ञान से आच्छन्न हैं। ऐसी स्थिति में श्रेष्ठ उपदेशों का मूल्य घट जाता है और वे मानो जीर्ण (निष्प्रयोज्य) हो जाते हैं। यह श्लोक तत्कालीन सामाजिक एवं बौद्धिक स्थिति का यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करता है।*

अर्थः- *हे मित्र! विद्वान् लोग ईर्ष्या से ग्रस्त हैं, सामर्थ्यवान् लोग अहंकार से दूषित हैं और अन्य सामान्य लोग अज्ञान से आच्छन्न हैं। इसलिए उत्तम एवं हितकारी वचन मानो निष्प्रभावी होकर उपेक्षित रह जाते हैं।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने समाज की एक अत्यन्त यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक समस्या का चित्रण किया है। कवि कहता है कि संसार में श्रेष्ठ विचारों एवं नीति-वचनों का सम्मान करने वाले व्यक्ति बहुत कम होते हैं। यही कारण है कि सुभाषितों का वास्तविक प्रभाव समाज पर नहीं पड़ पाता।

कवि के अनुसार ***'बोद्धारः'****, अर्थात् जो विद्वान् एवं विवेकी हैं, वे प्रायः मत्सर अर्थात् ईर्ष्या से ग्रस्त रहते हैं। वे किसी अन्य विद्वान् की श्रेष्ठ रचना अथवा विचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा नहीं कर पाते। विद्वत्ता के स्थान पर प्रतिस्पर्धा एवं अहंकार का भाव उनके निर्णय को प्रभावित कर देता है। दूसरे वर्ग में वे लोग आते हैं* ***जो 'प्रभवः'****, अर्थात् सामर्थ्य, पद, धन अथवा अधिकार से सम्पन्न हैं। ऐसे व्यक्ति अपने वैभव एवं शक्ति के कारण अहंकार से भर जाते हैं।* ***'स्मयदूषिताः'*** *होने के कारण वे किसी के उपदेश या नीति-वचन को सुनना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते हैं। उनका अहंकार उन्हें सत्य को स्वीकार करने से रोकता है। तीसरे वर्ग में सामान्य जन हैं, जिन्हें कवि* ***'अबोधोपहताः'*** *कहता है। वे अज्ञान एवं अविवेक से आच्छन्न हैं। उनमें न तो नीति को समझने की क्षमता है और न ही उसे जीवन में अपनाने की इच्छा। फलतः वे श्रेष्ठ वचनों का महत्त्व ही नहीं समझ पाते।*

इन तीनों स्थितियों के कारण कवि अत्यन्त व्यथित होकर कहता है कि हे मित्र! ऐसे वातावरण में सुभाषित मानो जीर्ण हो गए हैं। यहाँ ***'जीर्ण'*** *का अर्थ यह नहीं कि सुभाषितों का मूल्य समाप्त हो गया है, बल्कि यह है कि उन्हें ग्रहण करने वाले योग्य पात्रों के अभाव में उनका प्रभाव समाज में दिखाई नहीं देता। यह श्लोक मानव-स्वभाव का अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भर्तृहरि का संकेत है कि ईर्ष्या, अहंकार और अज्ञान—ये तीनों मानव-जीवन के ऐसे दोष हैं जो सत्य, ज्ञान एवं नीति के प्रसार में सबसे बड़ी बाधा बनते हैं।*

काव्यगत सौन्दर्य

1. इस श्लोक में मानव-स्वभाव का अत्यन्त यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।

2. स्वभावोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग है, क्योंकि विभिन्न वर्गों के स्वाभाविक दोषों का वर्णन किया गया है।

3. प्रसादगुण एवं अर्थगाम्भीर्य इस श्लोक की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

4. भाषा अत्यन्त सरल, परिमार्जित एवं प्रभावोत्पादक है।

5.अल्प शब्दों में समाज की गम्भीर समस्या का सशक्त चित्रण कवि की सूक्तिकारप्रतिभा का परिचायक है।

6. यहाँ शान्तरस प्रमुख है, किन्तु करुणा एवं निर्वेद की सूक्ष्म अनुभूति भी विद्यमान है।

7. श्लोक में दार्शनिक गम्भीरता एवं व्यावहारिक जीवनानुभव का अद्भुत समन्वय है।

श्लोक-*3*

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराधयते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति।।

(नीतिशतकम्-3)

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोक में कवि ने समाज में सुभाषितों की उपेक्षा के कारणों का वर्णन किया था। प्रस्तुत श्लोक में वे मानव-स्वभाव का अत्यन्त सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए बताते हैं कि मनुष्यों में सबसे अधिक कठिन वह व्यक्ति होता है जो अल्पज्ञान प्राप्त करके स्वयं को महान् विद्वान् समझने लगता है। पूर्णतः अज्ञानी व्यक्ति को समझाया जा सकता है तथा वास्तविक विद्वान् भी सत्य को सहजता से स्वीकार कर लेता है; किन्तु अल्पज्ञान से उत्पन्न अहंकारयुक्त व्यक्ति को स्वयं ब्रह्मा भी सन्तुष्ट अथवा शिक्षित नहीं कर सकते। इस प्रकार कवि ने आधे-अधूरे ज्ञान से उत्पन्न दम्भ की तीव्र आलोचना की है।*

अर्थ:- *अज्ञानी व्यक्ति को समझाना सरल है और वास्तविक विद्वान् को समझाना उससे भी अधिक सरल है; परन्तु जो मनुष्य थोड़े-से ज्ञान के कारण अहंकारी बन गया हो, उसे स्वयं ब्रह्मा भी प्रसन्न अथवा संतुष्ट नहीं कर सकते।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने मानव-स्वभाव का अत्यन्त गम्भीर एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। कवि का मत है कि मनुष्यों में सबसे अधिक कठिन स्वभाव उस व्यक्ति का होता है, जो अल्पज्ञान प्राप्त करके स्वयं को सर्वज्ञ समझ बैठता है। ऐसा व्यक्ति न किसी की बात सुनता है, न सत्य को स्वीकार करता है और न ही अपनी त्रुटियों का बोध करता है। कवि सर्वप्रथम ***'अज्ञः सुखमाराध्यः'*** *कहकर यह स्पष्ट करते हैं कि पूर्णतः अज्ञानी व्यक्ति सरल स्वभाव का होता है। यदि उसे उचित ढंग से समझाया जाए, तो वह सत्य को स्वीकार कर सकता है क्योंकि उसके भीतर मिथ्या-अभिमान नहीं होता।*

दूसरी ओर ***'विशेषज्ञः सुखतरमाराध्यते'*** *कहकर कवि बताते हैं कि वास्तविक विद्वान् उससे भी अधिक सरल होता है। सच्चे ज्ञान का प्रथम लक्षण विनय है। वास्तविक ज्ञानी सदैव सत्य का आदर करता है, तर्क को स्वीकार करता है तथा अपनी भूल का संशोधन करने में संकोच नहीं करता। इसीलिए उसे समझाना अत्यन्त सहज होता है। किन्तु सबसे अधिक दुराग्रही व्यक्ति वह है जो* ***'ज्ञानलवदुर्विदग्ध'*** *है, अर्थात् जिसने थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसी के कारण अहंकार से भर गया है। ऐसा व्यक्ति स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझता है तथा दूसरों की बात को तुच्छ मानता है। उसका अहंकार उसके विवेक को नष्ट कर देता है। फलतः वह सत्य को ग्रहण करने की क्षमता खो बैठता है।*

इसी तथ्य को अत्युक्तिपूर्ण शैली में व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि ऐसे मनुष्य को स्वयं ब्रह्मा भी प्रसन्न अथवा संतुष्ट नहीं कर सकते। यहाँ "ब्रह्मा" का प्रयोग अलंकारिक है, जिसका उद्देश्य यह बताना है कि अल्पज्ञानजन्य अहंकार मनुष्य के लिए सबसे बड़ा अवगुण है। यह श्लोक शिक्षा देता है कि ज्ञान का उद्देश्य अहंकार नहीं, बल्कि विनय, विवेक एवं सत्य की खोज है। जिस ज्ञान से विनय उत्पन्न न हो, वह वास्तविक ज्ञान नहीं है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में मानव-स्वभाव का अत्यन्त सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है।

2. विरोधाभासात्मक शैली के माध्यम से अज्ञानी, विद्वान् तथा अल्पज्ञानी—तीनों का प्रभावशाली तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

3. अतिशयोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग है— ***'ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति'।***

4. भाषा अत्यन्त सरल, प्रसादगुणयुक्त एवं अर्थगाम्भीर्य से सम्पन्न है।

5. श्लोक में सूक्तिपरकता एवं दार्शनिक व्यावहारिकता का अद्भुत समन्वय है।

6. प्रसादगुण एवं ओजगुण की प्रधानता है।

7. अल्प शब्दों में गहन जीवनानुभव की अभिव्यक्ति कवि की सूक्तिकार-प्रतिभा का परिचायक है।

श्लोक-4

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम्।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।

(नीतिशतकम्-4)

सन्दर्भ- प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोक में कवि ने अल्पज्ञान से उत्पन्न अहंकार की निन्दा करते हुए बताया था कि ऐसे व्यक्ति को स्वयं ब्रह्मा भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते। उसी विचार का विस्तार करते हुए प्रस्तुत श्लोक में कवि हठी एवं दुराग्रही मूर्ख की प्रकृति का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण करता है। कवि का मत है कि संसार के अत्यन्त कठिन एवं साहसपूर्ण कार्य भी किसी प्रकार सम्पन्न किए जा सकते हैं, किन्तु जिस मूर्ख का चित्त अपने मिथ्या विचारों में दृढ़तापूर्वक जड़ हो गया हो, उसे समझाना अथवा सन्मार्ग पर लाना सर्वथा असम्भव है। यह श्लोक मानवीय स्वभाव, दुराग्रह तथा अविवेक का अत्यन्त मार्मिक एवं यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है।*

अर्थ:- *मनुष्य बलपूर्वक मगरमच्छ के मुख में उसके दाँतों के बीच से रत्न निकाल सकता है, प्रचण्ड लहरों वाले समुद्र को पार कर सकता है तथा क्रोधित सर्प को भी फूल के समान सिर पर धारण कर सकता है; किन्तु हठपूर्वक अपने मत पर अड़े हुए मूर्ख व्यक्ति के मन को समझाना अथवा प्रसन्न करना कभी सम्भव नहीं है।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने मूर्खता एवं दुराग्रह की चरम सीमा का अत्यन्त प्रभावशाली चित्रण किया है। कवि का उद्देश्य यह बताना है कि संसार में अनेक कठिन एवं असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य भी साहस, परिश्रम एवं बुद्धिमत्ता से सम्पन्न किए जा सकते हैं, किन्तु जिस मूर्ख व्यक्ति का मन हठ एवं मिथ्याभिमान से जकड़ गया हो, उसका परिवर्तन अत्यन्त दुष्कर है।

कवि प्रथम उदाहरण देते हुए कहते हैं कि कोई साहसी व्यक्ति मगरमच्छ के मुख में उसके तीक्ष्ण दाँतों के बीच से भी रत्न निकाल सकता है। यह अत्यन्त जोखिमपूर्ण कार्य है, फिर भी साहस एवं कौशल से सम्भव हो सकता है। दूसरे उदाहरण में कवि कहता है कि प्रचण्ड एवं ऊँची-ऊँची लहरों से व्याकुल समुद्र को भी पार किया जा सकता है। यह कार्य भी अत्यन्त कठिन है, किन्तु उचित साधन, धैर्य एवं पराक्रम से इसे सम्पन्न किया जा सकता है। तीसरे उदाहरण में कवि अत्युक्ति के माध्यम से कहता है कि क्रोधित सर्प को भी कोई व्यक्ति पुष्प के समान सिर पर धारण कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि साहस एवं दक्षता से अत्यन्त भयावह वस्तुओं पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

किन्तु इन सब उदाहरणों के उपरान्त कवि अत्यन्त मार्मिक निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि हठपूर्वक अपने विचारों में जड़ हो चुके मूर्ख व्यक्ति के चित्त को समझाना या बदलना इन सभी कार्यों से भी अधिक कठिन है। ऐसा व्यक्ति न तर्क स्वीकार करता है, न प्रमाण, न अनुभव और न ही हितकारी उपदेश। उसका अहंकार एवं अविवेक उसके विवेक को

पूर्णतः ढक लेता है। इस प्रकार कवि यह शिक्षा देता है कि मूर्खता का सबसे बड़ा लक्षण दुराग्रह है। जहाँ विनय, विवेक और सत्य को स्वीकार करने की प्रवृत्ति नहीं होती, वहाँ उपदेश, ज्ञान और तर्क सभी निष्फल सिद्ध होते हैं।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार का अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। मगर के मुख से मणि निकालना, समुद्र पार करना तथा सर्प को सिर पर धारण करना अत्युक्तिपूर्ण उदाहरण हैं।
2. अनेक उदाहरणों द्वारा अन्तिम निष्कर्ष प्रस्तुत करने के कारण दृष्टान्त शैली का अत्यन्त प्रभावी प्रयोग हुआ है।
3. भाषा परिमार्जित, ओजस्वी तथा अर्थगाम्भीर्ययुक्त है।
4. प्रसादगुण एवं ओजगुण की प्रधानता है।
5. कवि ने अल्प शब्दों में मानव-स्वभाव का गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।
6. श्लोक में नीतिपरक सूक्तित्व तथा दार्शनिक गम्भीरता का अद्भुत समन्वय है।
7. क्रमशः कठिन से कठिनतर उदाहरण देकर अन्तिम निष्कर्ष प्रस्तुत करने से काव्य में प्रभावोत्पादकता अत्यधिक बढ़ गई है।

श्लोक-5

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्,
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटन् शशविषाणमासादयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्॥

(नीतिशतकम्-5)

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोक में कवि ने अनेक असम्भव प्रतीत होने वाले कार्यों का उदाहरण देकर यह प्रतिपादित किया था कि हठी एवं दुराग्रही मूर्ख के मन को परिवर्तित करना अत्यन्त कठिन है। उसी विचार को और अधिक सशक्त एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए इस श्लोक में कवि तीन ऐसे कार्यों का उल्लेख करता है जो वस्तुतः असम्भव हैं—बालू से तेल निकालना, मृगतृष्णा में जल प्राप्त करना तथा खरगोश के सींग ढूँढ़ लेना। इन असम्भव उदाहरणों के माध्यम से कवि यह सिद्ध करता है कि दुराग्रही मूर्ख को समझाना इन सब से भी अधिक कठिन है। इस प्रकार श्लोक में मूर्खता, हठ तथा मिथ्याभिमान की तीव्र भर्त्सना की गई है।

अर्थ:- मनुष्य बहुत प्रयत्न करके बालू से तेल निकाल सकता है, प्यास से व्याकुल होकर मृगतृष्णा में भी जल पी सकता है तथा कभी घूमते-घूमते खरगोश का सींग भी प्राप्त कर सकता है; किन्तु हठपूर्वक अपने मत पर अड़े हुए मूर्ख व्यक्ति के मन को समझाना अथवा बदलना कभी सम्भव नहीं है।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने अत्यन्त प्रभावशाली अतिशयोक्तिपूर्ण दृष्टान्तों के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि हठी एवं दुराग्रही मूर्ख को समझाना संसार का सबसे कठिन कार्य है। कवि ने यहाँ तीन ऐसे उदाहरण दिए हैं

जो वस्तुतः असम्भव हैं, परन्तु उनका उद्देश्य केवल यह दिखाना है कि मूर्ख के चित्त को परिवर्तित करना इन असम्भव कार्यों से भी अधिक दुष्कर है। कवि कहता है कि कोई व्यक्ति यदि अत्यधिक परिश्रम करे, तो मानो रेत को निचोड़कर भी तेल निकाल ले। यद्यपि यह वस्तुतः असम्भव है, तथापि कवि इसे केवल उपमा के रूप में प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार प्यास से अत्यन्त व्याकुल व्यक्ति मृगतृष्णा में भी जल पी ले, अर्थात् मरुभूमि में दिखाई देने वाले जल के भ्रम को वास्तविक जल समझकर उससे अपनी प्यास बुझा ले। यह भी वस्तुतः सम्भव नहीं है, क्योंकि मृगतृष्णा केवल दृष्टिभ्रम है। तीसरे उदाहरण में कवि कहता है कि कोई व्यक्ति संसार में घूमते-घूमते खरगोश का सींग भी प्राप्त कर ले। भारतीय साहित्य में **'शशविषाण'** असम्भव वस्तु का प्रसिद्ध प्रतीक है, क्योंकि खरगोश के सींग होते ही नहीं।

इन तीनों असम्भव उदाहरणों के पश्चात् कवि निष्कर्ष देता है कि हठपूर्वक अपने मत में दृढ़ मूर्ख व्यक्ति के मन को समझाना अथवा बदलना इन सब से भी अधिक असम्भव है। ऐसा व्यक्ति सत्य, तर्क, अनुभव तथा प्रमाण—किसी को भी स्वीकार नहीं करता। उसका अहंकार और दुराग्रह उसके विवेक को पूर्णतः नष्ट कर देता है। कवि का उद्देश्य मूर्ख व्यक्ति का उपहास करना नहीं, बल्कि यह शिक्षा देना है कि अज्ञान से अधिक घातक दुराग्रह है। जहाँ विनय, जिज्ञासा और सत्य को स्वीकार करने की प्रवृत्ति नहीं होती, वहाँ श्रेष्ठ से श्रेष्ठ उपदेश भी निष्फल सिद्ध होता है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग हुआ है।
2. शशविषाण, मृगतृष्णा तथा सिकतातैल भारतीय काव्यशास्त्र में असम्भवता के प्रसिद्ध प्रतीक हैं; इनके प्रयोग से कथ्य अत्यन्त प्रभावशाली बन गया है।
3. दृष्टान्त शैली का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है।
4. भाषा परिमार्जित, प्रौढ़, ओजस्वी एवं अर्थगाम्भीर्ययुक्त है।
5. प्रसादगुण तथा ओजगुण की प्रधानता है।
6. अल्प शब्दों में गहन जीवनानुभव एवं मनोवैज्ञानिक सत्य का निरूपण कवि की सूक्तिकार-प्रतिभा का परिचायक है।
7. सम्पूर्ण श्लोक नीतिपरक, व्यावहारिक एवं दार्शनिक चेतना से ओत-प्रोत है।

श्लोक-6

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,
भेत्तुं वज्रमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते,
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः॥

(नीतिशतकम्-6)

सन्दर्भ-प्रसंग:-प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में कवि ने दुराग्रही मूर्ख के स्वभाव का वर्णन करते हुए यह प्रतिपादित किया था कि उसे समझाना अत्यन्त कठिन है। प्रस्तुत श्लोक में उसी विचार का और अधिक प्रभावशाली विस्तार किया गया है। कवि अनेक असम्भव एवं हास्यास्पद उपमानों के माध्यम से यह सिद्ध करता है कि जो व्यक्ति दुष्ट अथवा खल पुरुषों को अमृततुल्य उपदेशों द्वारा सज्जनों के मार्ग पर लाने

का प्रयत्न करता है, उसका प्रयास उतना ही व्यर्थ है जितना कमल-तन्तु से हाथी को बाँधना, शिरीष-पुष्प से वज्र को तोड़ना अथवा खारे समुद्र को मधु की एक बूँद से मीठा बनाना। यह श्लोक खलस्वभाव की दुर्निवारता तथा व्यर्थ उपदेश की निष्फलता का उत्कृष्ट चित्रण करता है।

अर्थः- *जो व्यक्ति अमृत के समान मधुर एवं हितकारी उपदेशों द्वारा दुष्ट लोगों को सज्जनों के मार्ग पर लाना चाहता है, वह मानो कोमल कमल-तन्तुओं से उग्र पशु को बाँधने, शिरीष-पुष्प की पंखुड़ी से वज्र को तोड़ने तथा शहद की एक बूँद से खारे समुद्र को मीठा बनाने का प्रयास करता है।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने दुष्ट अथवा खल व्यक्ति के स्वभाव का अत्यन्त सजीव एवं प्रभावशाली चित्रण किया है। कवि का मत है कि दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन करना अत्यन्त कठिन है। जो व्यक्ति यह सोचता है कि केवल मधुर उपदेश देकर वह दुष्ट को सज्जन बना देगा, वह वस्तुतः असम्भव कार्य करने का प्रयास कर रहा है। कवि प्रथम दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए कहता है कि ऐसा व्यक्ति मानो कोमल कमल-नाल के तन्तुओं से उग्र एवं शक्तिशाली हाथी (व्याल) को बाँधना चाहता है। जिस प्रकार कोमल कमल-तन्तु हाथी की शक्ति को रोकने में सर्वथा असमर्थ हैं, उसी प्रकार केवल उपदेश दुष्ट व्यक्ति के दृढ़ कुसंस्कारों को नहीं बदल सकते। दूसरे दृष्टान्त में कवि कहता है कि वह शिरीष-पुष्प की कोमल पंखुड़ी से वज्र के समान कठोर रत्न को तोड़ने का प्रयत्न करता है। यह कार्य स्वभावतः असम्भव है। इससे तात्पर्य यह है कि कोमल उपदेशों का प्रभाव उस व्यक्ति पर नहीं पड़ता, जिसका हृदय दुष्टता एवं अहंकार से कठोर हो चुका हो। तीसरे दृष्टान्त में कवि कहता है कि ऐसा व्यक्ति शहद की एक बूँद से खारे समुद्र को मीठा बनाना चाहता है। यह भी असम्भव है, क्योंकि समुद्र की अपार लवणता पर एक बूँद मधु का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति के दीर्घकालीन दुर्गुण केवल मधुर वचनों से समाप्त नहीं होते।

अन्ततः कवि निष्कर्ष देता है कि जो व्यक्ति अमृत के समान हितकारी एवं मधुर उपदेशों द्वारा दुष्ट लोगों को सज्जनों के मार्ग पर लाना चाहता है, उसका प्रयास निष्फल सिद्ध होता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उपदेश का कोई महत्त्व नहीं है, बल्कि यह कि उपदेश तभी फलदायी होता है जब श्रोता में ग्रहणशीलता, विनय और आत्मपरिवर्तन की इच्छा हो। जहाँ हठ, दुराग्रह एवं दुष्टता का आधिक्य हो, वहाँ श्रेष्ठ से श्रेष्ठ उपदेश भी निष्प्रभावी हो जाते हैं।

काव्यगत सौन्दर्य

1. इस श्लोक में दृष्टान्त अलंकार का अत्यन्त उत्कृष्ट प्रयोग हुआ है। तीन प्रभावशाली उपमानों द्वारा एक ही सिद्धान्त को पुष्ट किया गया है।

2. अतिशयोक्ति अलंकार भी विद्यमान है, क्योंकि कमल-तन्तु से हाथी बाँधना, शिरीष-पुष्प से वज्र तोड़ना तथा मधु की एक बूँद से समुद्र को मीठा बनाना असम्भव कार्य हैं।

3. प्रसादगुण एवं ओजगुण का सुन्दर समन्वय है।

4. भाषा परिमार्जित, अर्थगर्भित तथा सूक्तिपरक है।

5. क्रमशः तीन असम्भव उदाहरणों द्वारा अन्तिम निष्कर्ष प्रस्तुत करने से काव्य में प्रभावोत्पादकता एवं तार्किकता दोनों का उत्कर्ष हुआ है।

6. श्लोक में नीति, मनोविज्ञान एवं व्यवहार-दर्शन का अत्यन्त सुन्दर समन्वय हुआ है।

7. सम्पूर्ण श्लोक में सूक्तिकाव्य की संक्षिप्तता एवं गाम्भीर्य स्पष्ट परिलक्षित होता है।

श्लोक-7

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।।

(नीतिशतकम्-7)

सन्दर्भ-प्रसंगः- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में कवि ने मूर्ख एवं दुराग्रही व्यक्तियों के स्वभाव तथा उन्हें उपदेश देने की निष्फलता का निरूपण किया है। प्रस्तुत श्लोक में कवि अज्ञानी व्यक्ति के लिए एक महत्त्वपूर्ण नीति का प्रतिपादन करते हुए कहता है कि यदि किसी व्यक्ति में पर्याप्त ज्ञान न हो, तो उसे अनावश्यक वाचालता का त्याग करके मौन धारण करना चाहिए। मौन अज्ञान को ढँकने वाला, स्वाधीन तथा श्रेष्ठ गुण है, विशेषतः विद्वानों की सभा में यह अज्ञानी व्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ आभूषण सिद्ध होता है। इस प्रकार कवि ने मौन, विनय तथा आत्मसंयम के महत्त्व का अत्यन्त मार्मिक निरूपण किया है।*

अर्थः-*विधाता ने अज्ञान को ढँकने के लिए मौन नामक एक ऐसा श्रेष्ठ गुण बनाया है जो मनुष्य के अपने ही वश में रहता है। विशेषकर विद्वानों की सभा में मौन अज्ञानी व्यक्ति का सबसे बड़ा आभूषण होता है।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने मौन की महिमा का अत्यन्त सुन्दर एवं व्यावहारिक निरूपण किया है। कवि का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और ज्ञान की सीमा का बोध होना चाहिए। जहाँ ज्ञान का अभाव हो, वहाँ अनावश्यक वाद-विवाद अथवा वाचालता व्यक्ति की अज्ञानता को और अधिक प्रकट कर देती है। इसके विपरीत मौन व्यक्ति की मर्यादा और सम्मान की रक्षा करता है। कवि कहता है कि विधाता ने अज्ञान को ढँकने के लिए मौन को एक अद्वितीय गुण के रूप में बनाया है। मौन मनुष्य के अपने ही अधिकार में है; वह चाहे तो बोल सकता है और चाहे तो मौन रह सकता है। इसीलिए इसे 'स्वायत्तम्' कहा गया है।

विशेषतः जब कोई व्यक्ति विद्वानों की सभा में उपस्थित हो, तब उसे अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने की अपेक्षा विनम्रता का परिचय देना चाहिए। यदि उसे विषय का पर्याप्त ज्ञान न हो, तो मौन धारण करना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। अनावश्यक बोलने से उसकी अज्ञानता प्रकट हो जाती है और वह उपहास का पात्र बन जाता है। कवि का उद्देश्य अज्ञान की प्रशंसा करना नहीं है, बल्कि यह शिक्षा देना है कि ज्ञान प्राप्त होने तक विनम्रता एवं मौन का पालन करना बुद्धिमत्ता का परिचायक है। मौन व्यक्ति को आत्मचिन्तन, श्रवण तथा ज्ञानार्जन का अवसर भी प्रदान करता है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में मौन को तप, संयम तथा विवेक का प्रतीक माना गया है। अतः इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि वाणी का संयम, आत्मनियन्त्रण तथा विनम्रता ही वास्तविक बुद्धिमत्ता के लक्षण हैं।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में नीतिरस एवं शान्तरस का सुन्दर समन्वय है।

2.रूपकात्मक शैली के माध्यम से मौन को 'अज्ञान का आवरण' तथा 'अपण्डित का आभूषण कहा गया है।

3. भाषा अत्यन्त सरल, परिमार्जित, प्रसादगुणयुक्त एवं सूक्तिपरक है।

4. अल्प शब्दों में गहन जीवनानुभव एवं व्यवहार-दर्शन का अत्यन्त प्रभावशाली निरूपण हुआ है।

5. प्रसादगुण की प्रधानता के साथ ओज एवं माधुर्य का भी समन्वय है।

6. श्लोक में व्यावहारिक नीति एवं मनोवैज्ञानिक सत्य का उत्कृष्ट समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

7. यह सम्पूर्ण श्लोक एक स्वतंत्र नीति-सूक्ति के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

श्लोक-8

यदा किञ्चिज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतं,
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।।

(नीतिशतकम्-8)

सन्दर्भ-प्रसंग:- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में कवि ने अल्पज्ञान से उत्पन्न अहंकार, मूर्खता तथा मौन की महत्ता का विवेचन किया है। प्रस्तुत श्लोक में कवि अपने आत्मानुभव के आधार पर ज्ञान एवं विनय के सम्बन्ध का अत्यन्त मार्मिक निरूपण करता है। कवि स्वीकार करता है कि जब उसे थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त हुआ, तब वह मदोन्मत्त हाथी के समान अहंकार से भर गया और स्वयं को सर्वज्ञ समझने लगा। किन्तु जब विद्वानों के सत्संग से वास्तविक ज्ञान का विस्तार हुआ, तब उसे अपनी सीमाओं का बोध हुआ और उसका अहंकार उसी प्रकार दूर हो गया, जैसे रोग के समाप्त होने पर ज्वर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार यह श्लोक विनय, सत्संग तथा वास्तविक ज्ञान की महत्ता का अनुपम प्रतिपादन करता है।

अर्थ:-जब मुझे थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त हुआ, तब मैं मदोन्मत्त हाथी के समान अहंकार से भर गया और मेरा मन यह सोचने लगा कि मैं सब कुछ जानता हूँ। किन्तु जब विद्वानों के सत्संग से थोड़ा-थोड़ा वास्तविक ज्ञान प्राप्त हुआ, तब मुझे अनुभव हुआ कि मैं तो अभी भी अज्ञानी हूँ। उस समय मेरा अहंकार रोग के दूर होने पर ज्वर के समान समाप्त हो गया।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने अपने आत्मानुभव के माध्यम से वास्तविक ज्ञान और विनय का अत्यन्त गम्भीर एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह श्लोक केवल एक व्यक्तिगत अनुभव नहीं, बल्कि प्रत्येक विद्यार्थी एवं विद्वान् के जीवन का सार्वभौमिक सत्य है।

कवि कहता है कि जब उसे थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त हुआ, तब वह मदोन्मत्त हाथी की भाँति अहंकार से भर गया। जैसे मदोन्मत्त हाथी अपने बल के अभिमान में किसी को कुछ नहीं समझता, वैसे ही अल्पज्ञ व्यक्ति अपने सीमित ज्ञान को ही सम्पूर्ण ज्ञान मान बैठता है। परिणामतः उसके मन में यह मिथ्या भावना उत्पन्न हो जाती है कि "मैं सर्वज्ञ हूँ"।

किन्तु जब कवि को विद्वानों का सत्संग प्राप्त हुआ और उसने उनके सान्निध्य में क्रमशः गहन एवं व्यापक ज्ञान अर्जित किया, तब उसे यह अनुभव हुआ कि उसके द्वारा अब तक प्राप्त ज्ञान तो विशाल ज्ञान-सागर की केवल एक बूँद के समान है। इस आत्मबोध ने उसके भीतर विनय उत्पन्न कर दी। कवि कहता है कि उसी समय उसका अहंकार ज्वर के

समान समाप्त हो गया। यहाँ अहंकार की तुलना ज्वर से अत्यन्त सार्थक है। जिस प्रकार ज्वर शरीर की सामान्य अवस्था नहीं, बल्कि एक रोग है और औषधि के प्रभाव से दूर हो जाता है, उसी प्रकार अहंकार भी अज्ञानरूपी रोग का लक्षण है, जो वास्तविक ज्ञान प्राप्त होने पर स्वतः नष्ट हो जाता है। इस प्रकार कवि यह शिक्षा देता है कि वास्तविक ज्ञान का प्रथम लक्षण विनय है। जितना-जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना-उतना मनुष्य अपनी सीमाओं का अनुभव करता है। इसके विपरीत अल्पज्ञान अहंकार को जन्म देता है। अतः मनुष्य को सदैव विद्वानों का सत्संग करना चाहिए और निरन्तर ज्ञानार्जन में तत्पर रहना चाहिए।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में स्वानुभव का अत्यन्त स्वाभाविक एवं प्रभावशाली चित्रण हुआ है।
2. उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग है— **"द्विप इव मदान्धः"** — अहंकार की तुलना मदोन्मत्त हाथी से।

"ज्वर इव मदः" — अहंकार की तुलना ज्वर से।

3. प्रसादगुण एवं माधुर्यगुण की प्रधानता है।
4. भाषा सरल, परिमार्जित एवं गहन दार्शनिक अर्थ से सम्पन्न है।
5. आत्मस्वीकृति एवं आत्मालोचन के कारण श्लोक में अत्यन्त प्रभावशाली आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
6. श्लोक में मनोवैज्ञानिक सत्य एवं आध्यात्मिक अनुभूति का अद्भुत समन्वय है।
7. सम्पूर्ण श्लोक एक उत्कृष्ट नीति-सूक्ति के रूप में प्रसिद्ध है।

श्लोक-9

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।
अधोऽधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।

(नीतिशतकम्-10)

सन्दर्भ-प्रसंगः- प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में कवि ने मूर्खता, क्षुद्रता तथा संकीर्ण मानसिकता के दुष्परिणामों का वर्णन किया है। प्रस्तुत श्लोक में वे विवेक के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए बताते हैं कि विवेक का नाश होने पर मनुष्य का पतन अवश्यंभावी हो जाता है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए कवि ने भागीरथी गङ्गा का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। गङ्गा स्वर्ग से भगवान् शंकर के मस्तक पर, वहाँ से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर तथा अन्ततः समुद्र में पहुँचती है। इस क्रमिक अवरोह का उदाहरण देकर कवि कहते हैं कि जिस प्रकार गङ्गा निरन्तर नीचे की ओर प्रवाहित होती है, उसी प्रकार विवेक से भ्रष्ट व्यक्ति का भी बार-बार पतन होता है।

अर्थः- गङ्गा स्वर्ग से भगवान् शिव के मस्तक पर, वहाँ से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और पृथ्वी से समुद्र तक निरन्तर नीचे उतरती चली गई। इसी प्रकार विवेक से भ्रष्ट मनुष्यों का पतन भी अनेक प्रकार से और बार-बार होता है।

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने विवेक की महत्ता तथा उसके अभाव से होने वाले पतन का अत्यन्त प्रभावशाली निरूपण किया है। कवि का मत है कि मनुष्य के जीवन में विवेक ही वह शक्ति है जो उसे ऊँचे आदर्शों, श्रेष्ठ आचरण तथा उन्नति के मार्ग पर स्थापित रखती है। जब यही विवेक नष्ट हो जाता है, तब मनुष्य का नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक पतन आरम्भ हो जाता है।

इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए कवि ने भागीरथी गङ्गा का अत्यन्त सुन्दर दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। गङ्गा का उद्गम स्वर्ग में माना गया है। वहाँ से वह भगवान् शिव के मस्तक पर अवतीर्ण हुई। शिव के जटाजूट से निकलकर वह हिमालय पर्वत पर पहुँची, वहाँ से पृथ्वी पर प्रवाहित हुई और अन्ततः समुद्र में जाकर मिली। इस सम्पूर्ण यात्रा में उसका मार्ग निरन्तर ऊँचाई से नीचे की ओर रहा। कवि इसी क्रमिक अवरोह को आधार बनाकर कहते हैं कि विवेक से भ्रष्ट मनुष्य का भी पतन इसी प्रकार क्रमशः अनेक स्तरों पर होता है। पहले उसका सद्विचार नष्ट होता है, फिर उसका चरित्र गिरता है, उसके बाद समाज में उसका सम्मान समाप्त होता है और अन्ततः उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व पतन की ओर अग्रसर हो जाता है।

यहाँ "शतमुखः विनिपातः" का तात्पर्य यह है कि विवेकहीन व्यक्ति का पतन केवल एक प्रकार से नहीं होता, बल्कि उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक—में अनेक प्रकार से होता है। महाकवि भर्तृहरि इस श्लोक के माध्यम से यह शिक्षा देते हैं कि मनुष्य का वास्तविक वैभव धन, पद अथवा शक्ति नहीं, बल्कि उसका विवेक है। यदि विवेक सुरक्षित है, तो पतन से बचा जा सकता है; किन्तु विवेक नष्ट होने पर कोई भी बाह्य वैभव मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकता।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में दृष्टान्त अलंकार का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है। गङ्गा के क्रमिक अवतरण के माध्यम से विवेकहीन व्यक्ति के पतन को स्पष्ट किया गया है।
2. अर्थान्तरन्यास अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग माना जा सकता है, क्योंकि गङ्गा का उदाहरण देकर सामान्य सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।
3. भाषा परिमार्जित, प्रसादगुणयुक्त तथा अर्थगाम्भीर्य से सम्पन्न है।
4. प्रसादगुण एवं ओजगुण की प्रधानता है।
5. गङ्गावतरण के पौराणिक प्रसंग का अत्यन्त सार्थक एवं कलात्मक उपयोग किया गया है।
6. श्लोक में नीति, दर्शन एवं पौराणिक परम्परा का अद्भुत समन्वय है।
7. संक्षिप्त शब्दों में गहन जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति कवि की सूक्तिकार-प्रतिभा का परिचायक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि की दार्शनिक दृष्टि, पौराणिक प्रतीकों के सार्थक प्रयोग तथा नीतिपरक चिन्तन का उत्कृष्ट उदाहरण है। गङ्गा के क्रमिक अवतरण के माध्यम से कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि विवेक ही मनुष्य की वास्तविक उन्नति का आधार है, और उसके अभाव में जीवन का पतन अनेक प्रकार से एवं निरन्तर होता रहता है।

अतः प्रत्येक मनुष्य को अपने विवेक, सद्बुद्धि एवं नैतिक चेतना की रक्षा करनी चाहिए। यही इस श्लोक का शाश्वत, व्यावहारिक एवं सार्वकालिक सन्देश है।

श्लोक-10

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्, छत्रेण सूर्यातपः,
नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो, दण्डेन गोगर्दभौ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं, मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।।

(नीतिशतकम्-11)

सन्दर्भ-प्रसंग:- *प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में कवि ने मूर्ख, दुराग्रही तथा विवेकहीन व्यक्तियों के स्वभाव का विशद् विवेचन किया है। प्रस्तुत श्लोक में उसी विचार को और अधिक प्रभावशाली रूप से प्रतिपादित करते हुए कवि बताते हैं कि संसार की प्रत्येक समस्या का कोई-न-कोई उपाय शास्त्रों में उपलब्ध है, किन्तु मूर्खता का कोई उपचार नहीं है। अग्नि, सूर्य की तपन, मदोन्मत्त हाथी, पशु, रोग तथा विष— इन सबका उपचार सम्भव है; परन्तु मूर्खता ऐसी व्याधि है, जिसके लिए कोई औषधि नहीं बताई गई। यह श्लोक विवेकहीनता की घोर निन्दा तथा सद्बुद्धि की महत्ता का सशक्त प्रतिपादन करता है।*

अर्थ:- *अग्नि को जल से बुझाया जा सकता है, सूर्य की गर्मी से छाते द्वारा बचा जा सकता है, मदोन्मत्त हाथी को तीक्ष्ण अंकुश से वश में किया जा सकता है, गाय और गधे को डण्डे से नियंत्रित किया जा सकता है, रोग का अनेक औषधियों से उपचार किया जा सकता है तथा विष का भी मन्त्रों आदि से निवारण किया जा सकता है;शास्त्रों में इन सबका उपाय बताया गया है,किन्तु मूर्खता का कोई उपचार नहीं है।*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने अत्यन्त प्रभावशाली शैली में यह प्रतिपादित किया है कि संसार की अधिकांश समस्याओं का समाधान सम्भव है, किन्तु मूर्खता एवं अविवेक का कोई उपचार नहीं है। कवि का अभिप्राय यह नहीं है कि अज्ञान दूर नहीं किया जा सकता, बल्कि यह है कि जो व्यक्ति अहंकार, दुराग्रह और सत्य को स्वीकार न करने की वृत्ति से ग्रस्त हो, उसकी मूर्खता का उपचार अत्यन्त कठिन है। कवि अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि अग्नि को जल द्वारा बुझाया जा सकता है। सूर्य की प्रचण्ड गर्मी से छाते के माध्यम से बचाव सम्भव है। मदोन्मत्त हाथी को तीक्ष्ण अंकुश द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। गाय और गधे जैसे पशुओं को भी डण्डे के द्वारा अनुशासित किया जा सकता है।

इसी प्रकार रोग का उपचार विभिन्न प्रकार की औषधियों से किया जा सकता है तथा विष का निवारण भी औषधि अथवा मन्त्र-प्रयोग द्वारा सम्भव माना गया है। इस प्रकार कवि यह सिद्ध करता है कि प्रकृति एवं जीवन की लगभग प्रत्येक समस्या का कोई-न-कोई उपाय उपलब्ध है। किन्तु अन्त में कवि अत्यन्त मार्मिक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति के लिए कोई औषधि नहीं है। यहाँ "मूर्ख" से अभिप्राय उस व्यक्ति से है जो सत्य, तर्क, अनुभव और उपदेश-किसी को भी स्वीकार नहीं करता। उसका दुराग्रह ही उसकी सबसे बड़ी बीमारी है। ऐसी मानसिकता

का उपचार बाह्य साधनों से सम्भव नहीं है।अतः कवि का स्पष्ट सन्देश है कि विनय, जिज्ञासा, सत्संग तथा सत्य को ग्रहण करने की प्रवृत्ति ही वास्तविक औषधि है। जहाँ ये गुण नहीं हैं, वहाँ शास्त्र, शिक्षा और उपदेश भी निष्फल सिद्ध होते हैं।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में दृष्टान्त अलंकार का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग हुआ है।

*2.अन्तिम चरण **"मूर्खस्य नास्त्यौषधम्"** सम्पूर्ण श्लोक का सार प्रस्तुत करता है; इससे कथन में अत्यधिक प्रभाव उत्पन्न हुआ है।*

3.अर्थान्तरन्यास अलंकार का भी सुन्दर प्रयोग है, क्योंकि अनेक उदाहरणों द्वारा सामान्य सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।

4. भाषा सरल, परिमार्जित, ओजस्वी तथा प्रसादगुणयुक्त है।

5.श्लोक में व्यावहारिक नीति, मनोवैज्ञानिक सत्य तथा दार्शनिक गाम्भीर्य का सुन्दर समन्वय है।

6. क्रमबद्ध उदाहरणों के माध्यम से निष्कर्ष तक पहुँचने की शैली अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

7. यह श्लोक संस्कृत साहित्य की सर्वाधिक प्रसिद्ध नीति-सूक्तियों में से एक है।

श्लोक-11

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,मनोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं, सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।।

(नीतिशतकम्-23)

***सन्दर्भ-प्रसंग:-** प्रस्तुत श्लोक महाकवि भर्तृहरि विरचित 'नीतिशतकम्' से उद्धृत है। पूर्ववर्ती श्लोकों में कवि ने व्यवहार-कुशलता, सदाचार तथा विभिन्न सद्गुणों की महिमा का प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत श्लोक में वे सत्सङ्गति (सज्जनों की संगति) के अनुपम महत्त्व का अत्यन्त प्रभावशाली निरूपण करते हैं। कवि के अनुसार सत्सङ्ग मनुष्य के जीवन को सर्वतोमुखी रूप से उन्नत करता है। वह बुद्धि की जड़ता को दूर करता है, वाणी में सत्य का संचार करता है, मन को उच्च बनाता है, पापों का नाश करता है, चित्त को निर्मल एवं प्रसन्न बनाता है तथा चारों दिशाओं में यश का विस्तार करता है। अतः कवि आश्चर्यपूर्वक प्रश्न करते हैं कि सत्सङ्गति मनुष्य के लिए ऐसा कौन-सा कल्याण है, जो नहीं करती?*

***प्रसादयति** — निर्मल एवं प्रसन्न करती है। **दिक्षु** — सभी दिशाओं में। **तनोति** — फैलाती है। **कीर्तिम्** — यश। **सत्सङ्गतिः** — सज्जनों की संगति। **कथय** — बताओ। **किम् न करोति** — क्या नहीं करती? **पुंसाम्** — मनुष्यों के लिए।*

***अर्थ:-** सज्जनों की संगति बुद्धि की जड़ता को दूर करती है, वाणी में सत्य का संचार करती है, मन को उच्च बनाती है, पापों को नष्ट करती है, चित्त को प्रसन्न करती है तथा सभी दिशाओं में यश फैलाती है। बताइए, सत्सङ्गति मनुष्य के लिए ऐसा कौन-सा कार्य है, जो नहीं करती ?*

हिन्दी व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि भर्तृहरि ने सत्सङ्गति की महिमा का अत्यन्त प्रभावशाली एवं जीवनोपयोगी वर्णन किया है। कवि का मत है कि मनुष्य के चरित्र, विचार एवं व्यक्तित्व के निर्माण में संगति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सज्जनों का संग मनुष्य के जीवन को भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर परिवर्तित कर देता है। कवि कहते हैं कि सत्सङ्गति सर्वप्रथम बुद्धि की जड़ता का नाश करती है। सज्जनों के सम्पर्क से मनुष्य में विवेक, ज्ञान एवं विचार-शक्ति का विकास होता है। इसके पश्चात् वह वाणी में सत्य का संचार करती है। सत्सङ्ग के प्रभाव से मनुष्य सत्यवादी, मधुरभाषी एवं मर्यादित बनता है। सत्सङ्ग मनुष्य के मन को उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित करता है। उसमें सद्भाव,उदारता,विनय तथा श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों का विकास होता है। साथ ही वह मनुष्य को दुष्कर्मों से दूर ले जाकर उसके पापों का निवारण करता है। आगे कवि कहते हैं कि सत्सङ्ग चित्त को निर्मल एवं प्रसन्न बनाता है। सज्जनों की संगति से मन में शान्ति, सन्तोष एवं आत्मविश्वास का उदय होता है। ऐसा व्यक्ति समाज में सम्मान प्राप्त करता है और उसकी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल जाती है। अन्त में कवि अत्यन्त प्रभावशाली प्रश्न करते हैं— 'कथय, सत्सङ्गतिः किं न करोति पुंसाम्'? अर्थात् बताइए, सज्जनों की संगति ऐसा कौन-सा कल्याण है, जो मनुष्य के लिए नहीं करती? इस प्रश्न के माध्यम से कवि यह सिद्ध करते हैं कि सत्सङ्ग मनुष्य के जीवन का सर्वश्रेष्ठ साधन है और उसके द्वारा जीवन का सर्वाङ्गीण विकास सम्भव होता है।

काव्यगत सौन्दर्य

1. प्रस्तुत श्लोक में प्रश्नालंकार का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। अन्तिम चरण— "सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्?"— श्लोक को अत्यन्त मार्मिक एवं स्मरणीय बनाता है।
2. अर्थान्तरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। सत्सङ्ग के विविध गुणों का उल्लेख कर उसकी महिमा सिद्ध की गई है।
3. भाषा सरल, परिमार्जित, प्रसादगुणयुक्त तथा अर्थगर्भित है।
4. प्रसादगुण एवं माधुर्यगुण की प्रधानता है।
5. क्रमिक शैली में सत्सङ्ग के छह प्रमुख लाभों का वर्णन श्लोक को अत्यन्त प्रभावशाली बनाता है।
6. नीति, दर्शन, मनोविज्ञान एवं आध्यात्मिक जीवन का सुन्दर समन्वय इस श्लोक की विशेषता है।
7. यह संस्कृत साहित्य में सत्सङ्ग-माहात्म्य का सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं उद्धृत श्लोकों में से एक है।

महत्त्वपूर्ण-प्रश्न

प्रश्न - नीतिशतकम् काव्य के आधार पर महाकवि भर्तृहरि की काव्य-शैली एवं भाषा-सौष्ठव पर प्रकाश डालिए-

महाकवि भर्तृहरि संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ नीतिकवि, सूक्तिकार तथा दार्शनिक चिन्तक माने जाते हैं। उनकी 'नीतिशतकम्' केवल नीति-उपदेशों का संग्रह नहीं, अपितु मानव-जीवन के व्यावहारिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का अत्यन्त गम्भीर एवं कलात्मक निरूपण है। उनकी काव्य-शैली में जहाँ विचारों की गम्भीरता है, वहीं भाषा में सौन्दर्य, माधुर्य, प्रसाद एवं ओज का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टि से नीतिशतकम् संस्कृत की नीति-काव्य परम्परा का अनुपम ग्रन्थ है।

भाषा-शैली

१. सूक्तिपरक (सूत्रात्मक) शैली:-भर्तृहरि की काव्य-शैली का प्रमुख वैशिष्ट्य उनकी सूक्तिपरकता है। उन्होंने अल्प शब्दों में गम्भीर जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया है। उनके प्रत्येक श्लोक में एक स्वतंत्र एवं पूर्ण जीवन-सत्य निहित रहता है। उदाहरण—**सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।** इस एक पंक्ति में सत्सङ्ग की सम्पूर्ण महिमा समाहित हो गई है।

२. नीतिप्रधान एवं उपदेशात्मक शैली:-नीतिशतकम् का मूल उद्देश्य मानव-जीवन को सदाचार, विवेक एवं नीति का मार्ग दिखाना है। अतः सम्पूर्ण काव्य में उपदेशात्मक शैली विद्यमान है, किन्तु यह शैली कहीं भी नीरस नहीं प्रतीत होती। **उदाहरण**: **वाग्भूषणं भूषणम्।** यहाँ कवि अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से शिष्ट वाणी को वास्तविक आभूषण सिद्ध करते हैं।

३. दृष्टान्तप्रधान शैली:- भर्तृहरि जटिल सिद्धान्तों को सरल एवं प्रभावशाली बनाने के लिए प्रकृति तथा दैनिक जीवन से दृष्टान्त ग्रहण करते हैं। उदाहरण—**न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम्।** कमल के कोमल तन्तु से हाथी को न बाँध पाने का दृष्टान्त देकर कवि बताते हैं कि महान् विद्वान धन के बन्धन में नहीं बँधते।

४. प्रश्नोत्तर एवं तर्कप्रधान शैली:- कवि अनेक स्थलों पर प्रश्नात्मक शैली का प्रयोग करते हैं, जिससे कथन अत्यन्त प्रभावशाली एवं विचारोत्तेजक बन जाता है। उदाहरण— **कथय किं न करोति पुंसाम्?**

किमरिभिः?

राज्येन किम्?..... इस प्रकार की शैली पाठक को आत्मचिन्तन के लिए प्रेरित करती है।

५.समन्वयात्मक शैली:- भर्तृहरि के काव्य में धर्म, नीति, दर्शन, मनोविज्ञान एवं लोकानुभव का अद्भुत समन्वय मिलता है। वे केवल आदर्शवादी नहीं हैं, बल्कि व्यवहारिक जीवन की यथार्थ समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत करते हैं।

६.अनुभूतिपरक शैली:- कवि के उपदेश केवल शास्त्रीय ज्ञान पर आधारित नहीं हैं, बल्कि उनके व्यक्तिगत अनुभव एवं गहन जीवन-अवलोकन का परिणाम हैं। इसलिए उनके कथनों में स्वाभाविकता एवं प्रामाणिकता विद्यमान है।

७.चित्रात्मक एवं प्रभावोत्पादक शैली:- भर्तृहरि अल्प शब्दों में अत्यन्त सजीव चित्र उपस्थित कर देते हैं। उदाहरण—**अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानाम्।** इस पद से मदमत्त हाथी का सजीव चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है।

८. व्यञ्जनाप्रधान शैली:- भर्तृहरि के काव्य में प्रत्यक्ष अर्थ से अधिक व्यञ्जना का महत्त्व है। उनके श्लोकों में गूढ़ जीवन-दर्शन निहित रहता है। उदाहरण— **विद्याविहीनः पशुः।**

यहाँ "पश" शब्द का अभिप्राय वास्तविक पशु नहीं, बल्कि विवेक एवं संस्कार से रहित मनुष्य है।

भाषा-सौष्ठव

१. प्रसादगुण की प्रधानता:- भर्तृहरि की भाषा सरल, स्पष्ट, प्रवाहमयी एवं सहज ग्राह्य है। गम्भीर विचार भी अत्यन्त सरल शब्दों में व्यक्त किए गए हैं। उदाहरण— **विद्या नाम नरस्य रूपमधिकम्।**

२.ओजगुण:- जहाँ उत्साह, नीति, वीरता अथवा आत्मबल का वर्णन है, वहाँ भाषा में ओज एवं प्रभाव का सुन्दर समावेश है। उदाहरण— **शौर्यं शत्रुजने।**

३.माधुर्यगुण:-सज्जनों, मित्रता, सत्सङ्ग एवं सदाचार के वर्णन में भाषा अत्यन्त मधुर एवं हृदयग्राही हो जाती है। उदाहरण—**सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।**

४.परिमार्जित एवं संस्कृतनिष्ठ भाषा:- नीतिशतकम् की भाषा शुद्ध, व्याकरणसम्मत, परिमार्जित एवं साहित्यिक संस्कृत का उत्कृष्ट उदाहरण है। शब्द-चयन अत्यन्त सटीक एवं अर्थपूर्ण है।

५.समास-बहुलता:- भर्तृहरि ने अल्प शब्दों में व्यापक अर्थ व्यक्त करने के लिए समासों का अत्यन्त प्रभावशाली प्रयोग किया है।

उदाहरण— **प्रच्छन्नगुप्तधनम्, विष्टपकष्टहारिणि, दुग्धजलभेदविधिः, यशःकायः, वाग्भूषणम्**

६.अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग:- भर्तृहरि ने अलंकारों का प्रयोग केवल काव्य-सौन्दर्य के लिए नहीं, बल्कि भावाभिव्यक्ति की सशक्तता के लिए किया है।

प्रमुख अलंकार— **उपमा, रूपक ,दृष्टान्त,अर्थान्तरन्यास,प्रश्नालंकार,व्यतिरेक,अनुप्रास,परिसंख्या**

७.छन्द-सौन्दर्य:- नीतिशतकम् के अधिकांश श्लोक अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी आदि छन्दों में रचित हैं। छन्दों की लयात्मकता श्लोकों को स्मरणीय एवं प्रभावशाली बनाती है।

८.अर्थगाम्भीर्य:- भर्तृहरि की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक श्लोक में बहुस्तरीय अर्थ निहित है। एक ही श्लोक सामान्य पाठक को सरल नीति देता है, जबकि विद्वान् उसमें दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक संकेत भी प्राप्त करता है।

समालोचनात्मक मूल्यांकन

महाकवि भर्तृहरि की काव्य-शैली में सरलता और गाम्भीर्य, उपदेश और काव्य, दर्शन और व्यवहार, सौन्दर्य और उपयोगिता का अद्वितीय समन्वय है। उनका प्रत्येक श्लोक स्वतंत्र सूक्ति के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। उन्होंने नीतिकाव्य को केवल उपदेशात्मक न रखकर उसे कलात्मक ऊँचाई प्रदान की है। उनकी भाषा न तो अत्यधिक क्लिष्ट है और न ही अत्यन्त सामान्य; वह परिमार्जित, अर्थगर्भित, ललित तथा प्रभावोत्पादक है।

निष्कर्ष

'नीतिशतकम्' के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि महाकवि भर्तृहरि संस्कृत के अप्रतिम सूक्तिकार, नीतिकार एवं शैली-शिल्पी हैं। उनकी काव्य-शैली में सूक्तिपरकता, दृष्टान्तप्रधानता, उपदेशात्मकता, तर्कशीलता, व्यञ्जनात्मकता एवं अनुभूतिपरकता का अद्भुत समन्वय है। उनकी भाषा प्रसाद, माधुर्य एवं ओज—तीनों गुणों से सम्पन्न, परिमार्जित, समास-समृद्ध, अलंकार-युक्त तथा अर्थगाम्भीर्य से परिपूर्ण है। यही कारण है कि नीतिशतकम् केवल संस्कृत का उत्कृष्ट नीति-काव्य ही नहीं, अपितु भारतीय जीवन-दर्शन का शाश्वत ग्रन्थ भी माना जाता है और आज भी समान रूप से प्रासंगिक एवं प्रेरणादायक है।

III. व्याकरण

प्रश्न-1 अक्षरसमाम्नाय का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए

अथवा

माहेश्वर सूत्रों की संख्या एवं नामोल्लेख कीजिए

अथवा

माहेश्वर सूत्रों का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए

उत्तर- ***अथाक्षरसमाम्नाय/ महेश्वरसूत्र***

'अक्षरसमाम्नाय' का तात्पर्य है- संस्कृत भाषा के वर्णों का क्रमबद्ध एवं शास्त्रीय रूप से व्यवस्थित संग्रह। व्याकरणशास्त्र में महर्षि पाणिनि द्वारा प्रयुक्त शिवसूत्रों/महेश्वर सूत्रों में वर्णों का जो विशिष्ट क्रम निर्धारित किया गया है, उसे ही सामान्यतः अक्षरसमाम्नाय कहा जाता है।

'अक्षर' का अर्थ है—वर्ण और 'समाम्नाय' का अर्थ है—परम्परा से प्राप्त क्रमबद्ध उपदेश या संग्रह। इस प्रकार अक्षरसमाम्नाय = वर्णों का क्रमबद्ध उपदेश/ संग्रह।

पाणिनीय परम्परा में शिवसूत्रों/ महेश्वर सूत्रों के माध्यम से वर्णों को चौदह सूत्रों में व्यवस्थित किया गया है, जैसे—

1.अ इ उण्। 2.ऋ ऌक्। 3. ए ओङ्। 4.ऐ औच्। 5.ह य व रट्। 6. लण्। 7. ञ म ङ ण नम्। 8. झ भ ञ्।

9.घ ढ ध ष्। 10. ज ब ग ड द श्। 11. ख फ छ ठ थ च ट त व्। 12.क प य्। 13. श ष स र्। 14.ह ल्।

ध्यातव्यः- *उपरोक्त चौदह सूत्र भगवान् महेश अर्थात् शिव के द्वारा प्रोक्त अर्थात् कहे गये हैं।इसलिये इनको माहेश्वर या शिव सूत्र कहा जाता है।*

इन सूत्रों के अन्त में प्रयुक्त इत्-वर्णों की सहायता से पाणिनि ने प्रत्याहार बनाए, जिनके द्वारा अनेक वर्णों का संक्षेप में निर्देश सम्भव हुआ। उदाहरणतः 'अच्' प्रत्याहार से सभी स्वर और 'हल्' प्रत्याहार से सभी व्यञ्जन ग्रहण किए जाते हैं। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि अक्षरसमाम्नाय संस्कृत व्याकरण की वर्ण-व्यवस्था का मूल आधार है, जिसके द्वारा वर्णों का क्रम, वर्गीकरण तथा प्रत्याहार-निर्माण सम्भव होता है।

इति माहेश्वराणि सूत्राण्यणादिसंज्ञार्थानि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण्मध्येत्वित्संज्ञकः ।

अर्थात् अ इ उ ण् इत्यादि चौदह माहेश्वर सूत्र हैं। इनका प्रयोजन अण् इत्यादि 42 प्रत्याहारों की रचना करना है। इन माहेश्वर सूत्रों के ण्, क्, ङ् इत्यादि सभी अन्त्य वर्ण इत्संज्ञक हैं, अर्थात् इन सबकी संज्ञा 'इत्' है।

'ह' आदि (हयवरट् आदि सूत्रों में पठित) समस्त वर्णों में श्रूयमाण 'अ' स्वर केवल व्यञ्जनों के उच्चारण के लिए ही है, अर्थात् 'ह' से लेकर अन्त तक के सभी व्यञ्जनों के साथ 'अ' स्वर उच्चारण सुविधा के लिए जुड़ा है। 'लण्' सूत्र में तो मध्यस्थ 'अ' की इत्संज्ञा होती है।

'लण्' सूत्र के विषय में विशेष ज्ञातव्य

माहेश्वर सूत्र में 'लण्' छठे स्थान पर है। इसमें केवल एक 'अ' है जो ल् और 'ण्' के बीच में स्थित है। लण् =ल् ण्। यद्यपि यह 'अ', 'ल्' और 'ण्' के उच्चारण में सहायक होता है, इसके साथ ही इसका एक और भी प्रयोजन है यह इत्सज्ञक भी है, इसलिए जैसे माहेश्वर सूत्रों के अन्त्य वर्ण प्रत्याहार की सिद्धि के लिए इत्संज्ञक होते हैं, वैसे ही यह भी एक विशेष प्रत्याहार ('र' प्रत्याहार) की सिद्धि के लिए 'इत्' कहा गया है। 'र' प्रत्याहार की सिद्धि पूर्व वर्ण (ह य व र ट्) के 'र' एवं परवर्ती इत्संज्ञक 'अ' को लेकर (र् + अ = र) होती है। इसमें 'र' का 'अ' उच्चारणार्थ होने से तथा ट् एवं परवर्ती इत्संज्ञक 'अ' इत् होने से ग्राह्य नहीं होंगे। इस प्रकार 'र' प्रत्याहार 'र्' एवं ल वर्णों का बोध कराने वाला होगा। इसलिए "उरण रपरः" (पा० 1/1/51) सूत्र के "रपरः" का अर्थ 'रपर' और 'लपर' दोनों होते हैं।

प्रश्न-2 : स्वरों के भेद-प्रभेद स्पष्ट कीजिए

अथवा

स्वरों के कितने भेद-प्रभेद हैं,स्पष्ट कीजिए

उत्तर- **स्वर के भेद-प्रभेद**

सूत्र — ऊकालोऽज्झस्वदीर्घप्लुतः 1.2.27

इस सूत्र में पाणिनि ने स्वरों की मात्रा अथवा उच्चारण-काल के आधार पर तीन भेद—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत— का विधान किया है।

पदच्छेद

ऊकाला + अच् + ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतः।

सूत्रार्थ:- उकार से लेकर ऊकार तक के काल से उच्चरित होने वाले अच् (स्वर) क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत कहलाते हैं।

सरल शब्दों में—जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का समय लगे, वह ह्रस्व; दो मात्रा का समय लगे, वह दीर्घ; और तीन मात्रा का समय लगे,तो वह प्लुत कहलाता है।

1. ह्रस्व: जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का काल लगता है, वह ह्रस्व कहलाता है।

उदाहरण— अ , इ, उ ,ऋ , ऌ

जैसे— नरः, मुनिः, गुरुः आदि में ह्रस्व स्वर पाए जाते हैं।

2. दीर्घ: जिस स्वर के उच्चारण में दो मात्राओं का काल लगता है, वह दीर्घ कहलाता है।

उदाहरण— आ, ई ,ऊ ,ॠ , ए ,ऐ ,ओ, औ

जैसे— रामा, नदी, वधू आदि में दीर्घ स्वर पाए जाते हैं।

3. प्लुत: जिस स्वर के उच्चारण में तीन मात्राओं का काल लगता है, वह प्लुत कहलाता है। सामान्यतः प्लुत का प्रयोग दूर से पुकारने, प्रश्न करने अथवा सामगान आदि विशेष प्रसंगों में होता है। लिखित रूप में इसके साथ प्रायः '३' अंक लगाया जाता है।

उदाहरण— हे राम३!

अर्थात् यहाँ 'राम' में 'आ' का उच्चारण तीन मात्राओं तक किया जाता है।

इसी प्रकार— भोः देवदत्त३!

यहाँ सम्बोधन को दूर से पुकारने के कारण स्वर का प्लुत उच्चारण किया गया है।

मात्रा के आधार पर भेद

क्रम	स्वर का प्रकार	उच्चारण-काल	उदाहरण
1	ह्रस्व	१ मात्रा	अ, इ, उ, ऋ
2	दीर्घ	२ मात्राएँ	आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ
3	प्लुत	३ मात्राएँ	आ३, ई३, ऊ३ आदि

विशेष बात

यहाँ 'ऊकाल' का अर्थ उकार से लेकर ऊकार तक का काल है। अर्थात् सूत्र में काल की मात्रा के आधार पर स्वरों की संज्ञा निर्धारित की गई है। इसलिए यह सूत्र मुख्यतः स्वरों के उच्चारण-काल (मात्रा) का विवेचन करता है।

संक्षेप में— एकमात्रः ह्रस्वः, द्विमात्रो दीर्घः, त्रिमात्रः प्लुतः।

अर्थात् एक मात्रा वाला ह्रस्व, दो मात्रा वाला दीर्घ और तीन मात्रा वाला प्लुत कहलाता है। यही पाणिनि की वैज्ञानिक स्वर-काल-व्यवस्था है।

ध्यातव्यः ह्रस्व,दीर्घ,प्लुतं का नामकरण स्वर के उच्चारण में लगने वाले समय के अनुसार निर्धारित किया गया है-

एक मात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चाऽर्ध मात्रिकम् ॥

स्पष्टीकरण उ + ऊ + ऊ3 = ऊ। यहाँ तीनों प्रकार के उकार में सन्धि करने से 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र में दीर्घ 'ऊ' ही होगा। इस प्रकार सूत्र में प्रयुक्त 'ऊ' तीन प्रकार के उकारों का बोधक है। उसका प्रथमा बहुवचन का रूप 'वः होगा, और षष्ठी विभक्ति में बहुवचन का रूप 'वां' का अर्थ होगा - 'उ ऊ ऊ3' इन तीनों का। इस प्रकार सूत्र-गत समासपद 'उकाल' का विग्रह होगा - 'वाँ' काल इव कालो यस्य सः' अर्थात् 'उ, ऊ, ऊ 3' के उच्चारण काल के समान ही उच्चारण काल जिन स्वरों का होता है, वे स्वर क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ एवं प्लुत कहलाते हैं।

स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा।

अर्थात् वह (ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत) प्रत्येक स्वर उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित के भेद से तीन प्रकार का होता है।

1.उच्चैरुदात्तः 1/2/29

उच्चैः (अ०) उदात्तः (प्र० ए०)

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेषूर्ध्वभागे निष्पन्नोऽजुदात्तसंज्ञः स्यात्।

अर्थात् जिन स्वरों की उत्पत्ति अपने उच्चारण स्थान के ऊपर के भाग से होती है, उनकी उदात्त संज्ञा होती है।

2. नीचैरनुदात्तः *1/2/30*

नीचैः (अ०) अनुदात्तः (प्र० ए०)

ताल्वादिषु सभागेषु स्थानेष्वधोभागे निष्पन्नोऽज् अनुदात्तसंज्ञः स्यात् ।

अर्थात् जिन स्वरों की उत्पत्ति अपने निर्धारित उच्चारण स्थान के नीचे के भाग से होती है, उन्हें अनुदात्त कहते हैं। उदाहरणार्थ जब 'अ' का उच्चारण कण्ठ के नीचे भाग से किया जायेगा तब उनकी संज्ञा अनुदात्त होगी।

3.समाहारः स्वरितः *1/2/31*

समाहारः (प्र० ए०), स्वरितः (प्र० ए०)

उदात्तानुदात्तत्वे वर्णधर्मौ समाहृयेते यत्र सोऽच् स्वरितसंज्ञः स्यात् ।

अर्थात् समाहार 'स्वरित' कहलाता है, अर्थात् उदात्त और अनुदात्त इन दोनों के धर्मों का जहाँ एक स्थान पर समाहार (संयोग) हो, वह स्वरित कहा जायेगा।

स्वरों के नौ भेदों की तालिका को अद्योविन्यस्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे सम्यक् रूप से स्वर भेद को सहजता से समझा जा सकेगा-

1. ह्रस्व उदात्त	*4. दीर्घ उदात्त*	*7. प्लुत उदात्त*
2. ह्रस्व अनुदात्त	*5. दीर्घ अनुदात्त*	*8. प्लुत अनुदात्त*
3. ह्रस्व स्वरित	*6. दीर्घ स्वरित*	*9. प्लुत स्वरित*

उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के चिह्नों का प्रयोग

संस्कृत का वह युग भी था, जब उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का प्रयोग लौकिक संस्कृत में भी होता था, किन्तु अब लौकिक सस्कृत में इसका प्रयोग सर्वथा समाप्त हो गया है। इनका प्रयोग प्रायः वैदिक सस्कृत में ही होता है। वेद में इनका व्यवहार सङ्केत चिह्नों से होता है। उदात्त के लिए कोई चिह्न नहीं होता है, अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा तथा स्वरित के ऊपर खड़ी रेखा के चिह्न प्रयुक्त होते हैं -

उदात्त = अ इ उ इत्यादि ।

अनुदात्त = अ_ इ _उ_ इत्यादि ।

1 1 1

स्वरित = अ इ उ इत्यादि ।

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ।

अर्थात् वह नौ प्रकार वाला अच् (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत में तीन भेद और उनकी पुनः उदात्त, अनुदात्त और स्वरित तीन भेद 3 ह्रस्व+ 3 दीर्घ + 3 प्लुत = 9) फिर नौ में से प्रत्येक स्वर अनुनासिक एवं अननुनासिक ये दो प्रकार के होते हैं। जिससे यह स्वर 9×2= 18 प्रकार का हो जाता है।

स्वरों के 18 भेद की तालिका को अधोविन्यस्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है-

1. ह्रस्व उदात्त अनुनासिक	7. दीर्घ उदात्त अनुनासिक	13. प्लुत उदात्त अनुनासिक
2. ह्रस्व उदात्त अननुनासिक	8. दीर्घ उदात्त अननुनासिक	14. प्लुत उदात्त अननुनासिक
3. ह्रस्व अनुदात्त अनुनासिक	9. दीर्घ अनुदात्त अनुनासिक	15. प्लुत अनुदात्त अनुनासिक
4. ह्रस्व अनुदात्त अननुनासिक	10. दीर्घ अनुदात्त अननुनासिक	16. प्लुत अनुदात्त अननुनासिक
5. ह्रस्व स्वरित अनुनासिक	11. दीर्घ स्वरित अनुनासिक	17. प्लुत स्वरित अनुनासिक
6. ह्रस्व स्वरित अननुनासिक	12. दीर्घ स्वरित अननुनासिक	18. प्लुत स्वरित अननुनासिक

अनुनासिकाननुनासिक

1. अनुनासिकः-

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः 1/1/8

मुखनासिकावचनः (प्र० ए०) अनुनासिकः (प्र० ए०)

मुखसहितनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्।

अर्थात् मुख तथा नासिका से उच्चरित वर्ण की अनुनासिक संज्ञा होती है। आशय यह है कि जिस वर्ण का उच्चारण मुख एवं नासिका दोनों से होगा वह अनुनासिक कहलायेगा।

2.अननुनासिकः-जब केवल मुख से उच्चारण होता है तो उसे अननुनासिका या निरनुनासिका कहा जाता है।

प्रत्येक अच् वर्ण का उच्चारण दो प्रकार से सम्भव है, केवल मुख से और नासिका सहित मुख से। जब केवल मुख से उच्चारण होता है तो उसे अननुनासिका या निरनुनासिका कहा जाता है, किन्तु जब नासिका के सहयोग से उच्चारण होता है तो उसे अनुनासिक या सानुनासिक कहते हैं।

तदित्थम्- 'अ इ उ ऋ' एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः। लृ वर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घाभावात्। एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्।

अर्थात् इस प्रकार 'अ इ उ ऋ' इन वर्णों के 18 प्रभेद होते हैं। लृ वर्ण के 12 प्रभेद होते हैं, क्योंकि 'लृ' का दीर्घ नहीं होता है। एच् अर्थात् ए ओ ऐ औ में से प्रत्येक के 12 भेद होते हैं, क्योंकि उनका ह्रस्व नहीं होता है।

प्रश्न-3: निमन सूत्रों की व्याख्या कीजिए-

1. **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्**
2. **हलन्त्यम्**
3. **अदर्शनं लोपः**
4. **आदिरन्त्येन सहेता**

उत्तर-

1. तुल्यास्यप्रयत्नम् तुल्यास्यप्रयत्नम्

तुल्यास्यप्रयत्नम् (प्र० ए०) सवर्णम् (प्र० ए०)

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथं सवर्णसंज्ञं स्यात् ।

अर्थात् जिस वर्ण का कण्ठ, तालु आदि (उच्चारण) स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न जिस वर्ण के उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न के तुल्य हों, वे दोनों आपस में सवर्ण संज्ञक कहलाते हैं।

ऋतृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यवाच्यम् (वार्तिक)

ऋतृवर्णयोः (ष० दि०) मिथः (अ०) सावर्ण्यम् (प्र० ए०) वाच्यम् (प्र० ए०)

अर्थात् 'ऋ' और 'ऌ' वर्ण का (स्थान भेद होने पर भी) परस्पर सवर्ण संज्ञा कहना चाहिए।

2.हलन्त्यम्

हल् (प्र० पु०) अन्त्यम् (प्र० ए०)

उपदेशेऽन्त्यं हलित्स्यात् । उपदेश आद्योच्चारणम्

अर्थात् उपदेश में अन्त्य (अन्तिम) हल (व्यञ्जन) इत्संज्ञक होता है। प्रथम (आदि) उच्चारण को उपदेश कहते हैं।

ध्यातव्यः- *उपरोक्त महेश्वर सूत्रों को आदि उच्चारण या उपदेश कहते हैं।*

सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्त्तनीयं सर्वत्र ।

अर्थात् जो पद सूत्रों में विद्यमान न हों, उन्हें अन्य सूत्रों से सर्वत्र (अष्टाध्यायी में) अनुवृत्त (अन्य सूत्रों से ग्रहण) कर लेना चाहिए।

3.अदर्शनं लोपः

अदर्शनम् (प्र० ए०) लोपः (प्र० ए०)

प्रसक्तस्यादर्शनं लोपसंज्ञं स्यात् । णादयोऽणाद्यर्थाः ।

अर्थात् उपस्थित का अदर्शन लोप कहलाता है। वर्तमान (वर्ण) के न दिखाई पड़ने, अर्थात् न सुनाई पड़ने की संज्ञा 'लोप' होती है। 'ण्' आदि (माहेश्वर सूत्र के अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण) अण् आदि प्रत्याहारों की सिद्धि के लिए हैं।

4. आदिरन्त्येन सहेता

आदिः (प्र० ए०) अन्त्येन (तृ० ए०), सह (अ), इता (तृ० ए०)

अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात् ।

यथा - 'अण्' इति 'अ इ उ' वर्णानां संज्ञा । एवम् अच्, अल्, हलित्यादयः ।

अर्थात् आदि+अन्त्येन,सह+इता(इत् के तृतीया एकवचन का रूप है), अन्त्य अर्थात् इत्संज्ञक वर्ण से युक्त आदि वर्ण मध्यस्थ एवं अपने का बोधक होता है। जैसे अण्, अ इ उ वर्णों का बोधक है। इसी प्रकार अच्, अल् और हल् इत्यादि भी बोध्य हैं। पाणिनि व्याकरणशास्त्र में केवल 42 प्रत्याहारों का ही उपयोग होता है।

इति.....

डॉ. सी. किशोर शास्त्री